सिद्धयोग

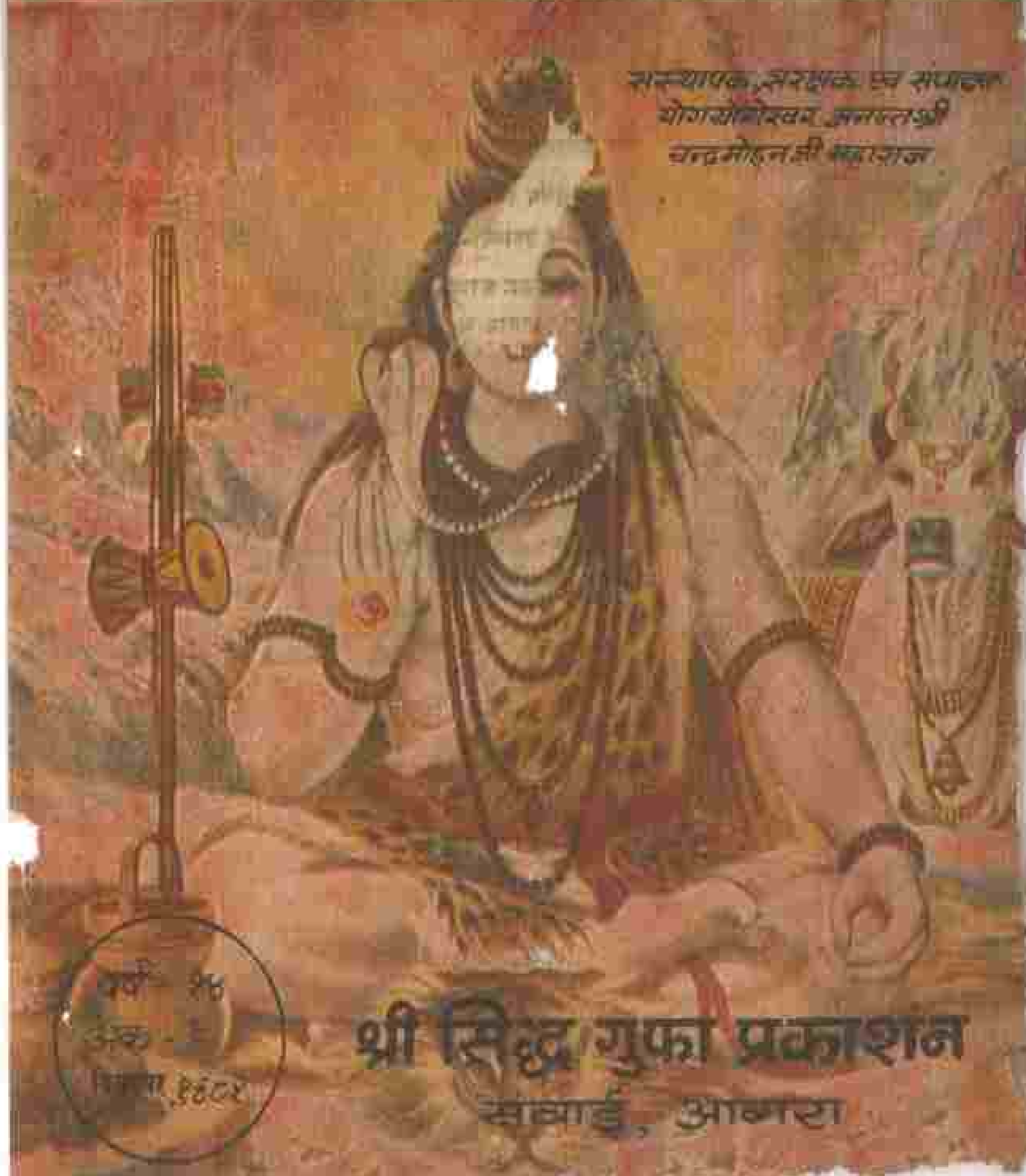

संस्थापक, संरक्षक एवं संपादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष - १८
अंक - १
...ा १९८८

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
खन्दाई, आगरा

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा, सवाई

इस अंक में—

卐

- मे मुक्तयोगागमम् १
- श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग क्या ? (विशेष लेख)
  योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज २
- योगिराज श्री तैलंग स्वामी
  श्री केशव उपाध्याय ५
- ये शब्द सुमन निबद्धाः काव्याञ्जलयः
  श्री द्वारिकाप्रसाद शर्मा ६
- योग-चिकित्सा
  श्री सिद्धदेव शर्मा १०
- सिद्धपथ-पाथेय
  डा० श्री विजयसिंह १४
- पातञ्जल योगशास्त्र के अनुसार भुवनों का स्वरूप
  डा० श्री बलदेव त्रिपाठी १७
- भजन
  श्री पं० प्राणनाथ शर्मा २५
- ध्यानयोग तथा सिद्धियाँ
  आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा २६
- पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् ४६

卐

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

वार्षिक मूल्य : १८ रुपया

वर्ष १४
अङ्क ९

दिसम्बर
१९८१

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वधामम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं न विशती, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थात् बहुविधार्द योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणार्थं भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

❀ मुञ्चत्याशामर्षम् ❀

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ॥
पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं, तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !

अर्थात्

बार-बार जन्म हुआ बार-बार मरण हुआ, बार-बार माता के गर्भ में शयन करना पड़ा किन्तु इस दुस्तर (कठिनाई से पार किये जाने वाले) संसार में आकर कभी यह भी नहीं कहा कि 'हे मुरारे ! इस जन्म-मरण के दुःख से मेरी रक्षा करो । लगातार दिन, रात, पक्ष, मास, अयन और वर्ष व्यर्थ बीतते जा रहे हैं तथापि आशा और द्वेष नहीं छूटते हैं। हे मूर्ख ! इस माया जाल को छोड़कर तू गोविन्द का भजन कर । — आचार्य शङ्कर

हमारा विशेष लेख—

श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग क्या ?

— योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

शास्त्रों में श्रेय और प्रेय मार्ग का विशदता से उल्लेख किया गया है आज हम सिद्धयोग के पाठकों को यही समझाने का प्रयत्न करेंगे कि श्रेय और प्रेय मार्ग क्या है और प्रेय की अपेक्षा श्रेय मार्ग कल्याणकारी क्यों है ?

श्रेय का अर्थ है— कल्याण का साधन और प्रेय का अर्थ है—मन को प्रिय लगने वाला साधन। शास्त्रों में श्रेय और प्रेय ये दो ही सुख के साधन माने गये हैं। कठोपनिषद में इन दोनों का वर्णन करते हुए कहा गया है—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति
हीयते अर्थाद्य ऽप्रेयो वृणीते ।।

अर्थात् कल्याण का साधन अलग ही है। इस प्रकार अपने-अपने ढंग से मनुष्य को सुख पहुँचा सकने वाले ये दोनों भिन्न-भिन्न साधन मनुष्य को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। उनमें से श्रेय को अपनाने वाले का तो सब प्रकार से कल्याण हो जाता है और जो प्रेय को अपनाता है वह परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति रूप यथार्थ लाभ से वंचित रह जाता है। उपनिषद् में आगे पुनः यही बात कही गई है—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते,
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।।

श्रेय और प्रेय ये दोनों ही साधन मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान मनुष्य उन दोनों के गुण दोषों पर भली भाँति विचार करके दोनों को पृथक-पृथक समझने की चेष्टा करता है और वह प्रेय की अपेक्षा श्रेय अर्थात परमार्थ साधन को श्रेष्ठ समझकर उसे ही अपनाता है किन्तु मन्दबुद्धि मनुष्य लौकिक भोग-साधनों को ही सुख का हेतु मानकर उनकी प्रचुर मात्रा में प्राप्ति एवं वृद्धि की इच्छा से प्रेय को अपनाता है।

प्रेयमार्ग को प्रवृत्ति मार्ग भी कहा जाता

है। क्योंकि जीव इन्द्रियों के रूप, रस, गन्ध, आदि विषयों से आकर्षित होकर स्वाभाविक ही उस ओर प्रवृत्त होता है। यह मार्ग जीव के बन्धन का मार्ग है। प्रेयके अनुगामी व्यक्ति स्त्री, पुत्र, धन, मान, पद, प्रतिष्ठा आदि इस लोक तथा परलोक के भोग साधनों को ही सुख का आधार समझकर अत्यन्त ममता और आसक्तिपूर्वक उनकी प्राप्ति के उपायों में लगे रहते हैं। रजोगुण की प्रबलता के कारण वे शास्त्रों की अवहेलना करते हुए काम्य और निषिद्ध कर्मों में ही रत रहते हैं, जिस कारण उन्हें अपने कर्मों का फल भोगने के लिये नाना योनियों में भटकना पड़ता है। इस प्रकार वे जन्म-मरण, जरा, व्याधि आदि के महान कष्टों को भोगते हुए अत्यन्त क्लेशित रहा करते हैं। परमार्थ से भ्रष्ट होने के कारण वे कल्याण के भागी नहीं बन पाते। उपनिषदों में प्रेयमार्गी व्यक्तियों की अधोगति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः,
　　स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढ़ाः,
　　अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः॥

जब अन्धे मनुष्य को मार्ग दिखाने वाला भी अन्धा ही मिल जाता है तो जिस प्रकार वह अपने लक्ष्य पर न पहुँच कर बीच में ही ठोकरें खाता हुआ भटकता रहता है ठीक यही दशा उन ज्ञानाभिमानियों की भी हुआ करती है जो अविद्याग्रस्त होते हुए भी अपने आप को ही बुद्धिमान और विद्वान समझते हुए शास्त्र और महापुरुषों के वचनों की अवहेलना करके भोगों को भोगने में तथा उनके उपायभूत अविद्यामय सकाम कर्मों में ही संलग्न होकर अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ खो देते हैं—

अन्धं तमः प्रविशन्ति-
　　　　येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते
　　　　य उ विद्यायां रता॥

जो मनुष्य भोगों में आसक्त होकर उनकी प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के सकाम कर्मों को करते हैं वे उन कर्मों के फलस्वरूप अज्ञान रूपी अन्धकार से परिपूर्ण विविध योनियों को प्राप्त होते हैं और जो ज्ञान के मिथ्याभिमान में मस्त होकर निष्क्रिय बने रहते हैं वे उनसे भी अधिक नीच योनियों में जाते हैं।

इस प्रकार प्रेयमार्ग आत्मा को अधोगति में ले जाने का मार्ग है। आत्मोत्थान का साधन तो श्रेय ही है। गीता के १६वें अध्याय में दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा के नाम से श्रेय और प्रेय का सविस्तार वर्णन किया गया है और दैवी सम्पदा को ही श्रेय का साधन बताया गया है।

दैवी सम्पदा क्या है और आसुरी सम्पदा क्या है तथा दैवी सम्पदा श्रेय का साधन किस

प्रकार है ? इसके सम्बन्ध में भगवान ने अपने मुखारविन्द से कहा है—

दैवी सम्पद्विमोक्षाय
निबन्धायासुरी मता ।

अर्थात् दैवी सम्पदा मनुष्य को मोक्ष प्रदान करती है और आसुरी सम्पदा उसे बन्धन में डालती है। दैवी सम्पदा की व्याख्या करते हुए भगवान ने कहा है—

अभयं सत्त्व संशुद्धि-
र्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वा-
ध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः
शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं
मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौच-
मद्रोहो नातिमानता ।
भवन्ति सम्पदं दैवी-
मभिजातस्य भारत ॥

अर्थात् निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, परमात्मा को तत्त्व से जानने के लिए निरन्तर ध्यानाभ्यास में रत रहना, सात्विक दान, इन्द्रिय निग्रह, भगवत् पूजन, अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मों का आचरण, मन्त्रजप तथा वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन, तप, वाणी तथा मन की सरलता, मन, वाणी तथा शरीर से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार से कष्ट न देना, सत्य और प्रिय बोलना, क्रोध का न होना, त्याग, शान्ति, किसी की निन्दा न करना, प्राणिमात्र में दया, विषय-भोगों में आसक्ति का न होना, हृदय की कोमलता, शास्त्र-विरुद्ध आचरण करने में लज्जा अनुभव करना, चंचलता का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, किसी से द्रोह न करना, श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव ये सब दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुषों के लक्षण हैं। दैवी सम्पदा सम्पन्न व्यक्ति ही परम-कल्याण के भागी बना करते हैं। प्रेय मार्ग के अवलम्बी अर्थात आसुरी स्वभाव वाले हुआ करते हैं। उनका आचरण कैसा होता है यह भी सुनो—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धय ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥

आसुरी स्वभाव वाले लोग कर्त्तव्य कर्मों में प्रवृत्त होने और निषिद्ध कर्मों से निवृत्त होने का ज्ञान नहीं रखते। अतः उनमें पवित्रता, सदाचार और सत्य भाषण नहीं हुआ करता। वे कहा करते हैं कि यह संसार स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है, अतः केवल भोगों के भोगने के लिये ही है। ईश्वर की कोई सत्ता ही नहीं है। उसकी मिथ्या कल्पना की गई है। ऐसी मिथ्या मान्यता से नष्ट हुए स्वभाव वाले मन्द बुद्धि लोग दूसरों का अहित ही किया करते हैं। ऐसे क्रूरकर्मी मनुष्य केवल संसार का नाश करने के लिये ही उत्पन्न हुआ करते हैं। अतः श्रेय मार्गावलम्बियों को आसुरी सम्पदा का त्याग करके श्रेष्ठ व दैवी सम्पदा को ही अपनाना चाहिए।

योगिराज श्री तैलंग स्वामी

श्री केशव उपाध्याय, वाराणसी

भारत की पवित्र भूमि सदा से ही आध्यात्मिक प्रेरणा की स्रोत रही है। उसमें भी भगवान शंकर के त्रिशूल पर बसी काशी नगरी का अपना विशेष महत्व है। कदाचित ही कोई महापुरुष होगा जिसका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में इस पवित्र नगरी से न रहा हो। इसी नगरी में समाधिस्थ हुये एक प्रसिद्ध योगिराज श्री तैलंग स्वामी के जीवन-चरित्र और उससे सम्बन्ध रखने वाली योग-परक घटनाओं का वर्णन करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

घटना सन् पन्द्रह सौ उन्तीस (१५२९ ई०) ईस्वी की है। दक्षिणी भारत के विजियाना ग्राम में एक शिव-भक्त ब्राह्मण परिवार में एक बालक का जन्म हुआ। ब्राह्मण दम्पति ने बालक का प्रारम्भिक नाम 'शिवराम' रखा। इस बालक के पिता का नाम श्री नृसिंहधर तथा माता का नाम श्रीमती विद्यावती था। श्री शिवराम अपने बाल्यकाल में परम शान्त एवं प्रखर बुद्धि वाले बालक थे, परन्तु दूसरे का कष्ट देखकर आप स्वयं दुःखी हो जाते थे। धीरे-धीरे आपने बाल्यकाल की अवस्था को पारकर किशोरावस्था में पदार्पण किया, परंतु उस समय भी आप यौवन सुलभ उत्साह एवं खुशी की जगह अन्य मनस्क ही रहते थे। आपकी इस अवस्था को देखकर आपके पिताजी बहुत चिन्तित रहने लगे और आपके विचारों में परिवर्तन लाने हेतु आपके शादी के सम्बन्ध में विचार करने लगे, परन्तु आपने विवाह करने से साफ-साफ इन्कार कर दिया और कहा कि इस नश्वर शरीर को माया-जाल में फँसाने का क्या प्रयोजन है? यदि यह शरीर ईश्वर के कार्य में लग जाय तो कितना अच्छा हो!

शिवराम की माता जी भगवान सदाशिव की पूजा बड़ी भक्ति-भाव के साथ किया करती थीं। जब उनकी माता जी भगवान शिव की पूजा के पश्चात् ध्यान-मग्न हो जाया करती थीं, तो उनके मुख-मण्डल पर दिव्य-कान्ति आलोकित होती थी। इस स्थिति में शिवराम अपनी माता के पास बैठकर अपरमित आनन्द का अनुभव किया करते थे। इनकी माता जी इनके मनोभाव को अच्छी प्रकार जानती थीं, अतः जब इन्होंने अपने

पूज्य पिता से विवाह की बात को ठुकरा दिया तो इनकी माता जी को थोड़ा भी क्लेश या आश्चर्य नहीं हुआ अपितु उन्हें प्रसन्नता हुई कि उनका बालक ठीक रास्ते पर चल रहा है। इनकी माताजी बराबर इन्हें धार्मिक और योग-युक्त चर्चायें सुनाया करती थी जिससे इनके हृदय में धर्म की भावना क्रमशः बलवती होती गयी। इसी समय इनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया।

पिता की मृत्यु के पश्चात् इनकी माताजी सांसारिक प्रत्येक कार्य के प्रति उदासीन रहने लगीं तथा रात-दिन भगवद् चिन्तन में व्यतीत करने लगीं। शिवराम भी अपनी पूजनीय माता जी के साथ तन्मय ईश्वराधना में लीन रहने लगे। पिता के स्वर्ग सिधारने के ठीक बारह वर्ष पश्चात् आपकी माताजी का भी पार्थिव शरीर इस नश्वर संसार से चल बसा! अब इनके हृदय में वैराग्य के भाव दृढ़ होते गये। वह स्थान जहां इनकी माता की चिता जली थी, इन्हें अत्यन्त प्रिय लगने लगा तथा अपनी माता के चिता-भस्म को मस्तक पर धारण कर आप श्मशान पर ही रहने लगे। पारिवारिकजनों का प्रेम इन्हें संसार में लाने में सर्वथा असमर्थ रहा। श्री शिवराम को लोग श्री तैलंगधर नाम से भी पुकारा करते थे। लगातार बीस वर्ष श्मशान पर व्यतीत करने के बाद आप पुष्कर-तीर्थ गये और वहां के भगीरथ स्वामी से दीक्षा ग्रहण की। श्री भगीरथ स्वामी के शरीर त्यागने के पश्चात् आप पुष्कर तीर्थ से तीर्थ यात्रा करने निकले। तीर्थ-यात्रा समाप्त कर आप नेपाल गये और वहां घनघोर जंगल में योगाभ्यास करने लगे।

जिस समय तैलंगधर जी नेपाल के जंगल में योगाभ्यास में लीन थे, उसी समय नेपाल राज्य के राजाधिराज अपनी सेना के साथ उसी जंगल में शेर का शिकार करने पहुँच गये। महाराजा के सेनापति ने एक शेर को निशाना बनाकर गोली चलाई। शेर प्राण-भय से भयभीत होकर भागा, और जहां श्री तैलंगधर जी ध्यान-मग्न थे, उसी स्थान पर पहुँच कर कांपता हुआ उनके पैरों में पालतू कुत्ते की तरह लोट-पोट करने लगा। श्री तैलंगधर जी का ध्यान खुल गया और आंख खुलते ही वे सब रहस्य समझ गये। उन्होंने शेर के शरीर पर हाथ फेर कर उसे अभय किया। इसके साथ ही, सेनापति भी अपने सिपाहियों के साथ शेर की खोज करता हुआ उस स्थान पर पहुँच गया। सेनापति और उसके सिपाहियों ने जब यह दृश्य देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सेनापति और सिपाहियों ने दूर से ही महात्मा जी को प्रणाम किया और भय से कांपते रहे। महात्मा जी ने बतलाया कि इसमें भय या

आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यदि तुम भी सभी प्रकार की हिंसा के भाव छोड़ दो तो कोई भी हिंसक जन्तु तुम्हारे साथ हिंसा का बर्ताव नहीं करेगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तुम्हारे सामने है। सेनापति ने अविलम्ब यह खबर राजा को दी, राजा ने अमूल्य रत्नों के साथ श्री महाराज जी के चरणों में पहुँच कर प्रणाम किया। श्री तैलंगधर जी ने नेपाल के महाराज की सभी वस्तुयें तथा रत्न लौटा दिये और उन्हें तथा उनके सैनिकों को सदुपदेश देकर विदा किया। उपरोक्त घटना के व्यापक प्रचार से श्री तैलंगधर जी को अपने योगाभ्यास में कठिनाई आने लगी अतः वे नेपाल छोड़कर तिब्बत चले गये, वहाँ कुछ दिन रहने के पश्चात् मानसरोवर पहुँचे, फिर नर्मदा तट पर मार्कण्डेय आश्रम गये, वहां कुछ दिन निवास करने के पश्चात् प्रयागधाम पधारे। भगीरथ स्वामी से दीक्षित होने के कारण इन्हें तैलंग स्वामी के नाम से भी पुकारा जाता है।

प्रयागधाम में निवास करते समय एक दिन की घटना है कि स्वामी जी घाट पर बैठे हुए थे। घाट के उस पार से यात्रियों से भरी हुई एक नाव इस पार को आ रही थी। स्वामी जी उस नाव को देख रहे थे। उसी समय बड़ी तेज आँधी आई और पानी पड़ना आरम्भ हो गया। सभी प्राणी घाट छोड़कर अन्यत्र जाने लगे। स्वामी जी को पहचानने वाले एक ब्राह्मण ने उनसे प्रार्थना की कि महाराज आप भी घाट छोड़कर अन्यत्र चलें। स्वामी जी ने उत्तर दिया, "देखो, यह यात्रियों से भरी हुई नाव जो इस तरफ को आ रही है, पानी में अभी डूबने वाली है और हमें उसके यात्रियों को बचाना है।" इतना कहने भर की देर थी, नाव यकायक नदी में में डूब गई एवं उसके साथ ही स्वामी जी भी घाट से अदृश्य हो गये। घाट छोड़कर जाने के लिए प्रार्थना करने वाला ब्राह्मण भी आगे के परिणाम की प्रतीक्षा में घाट पर ही खड़ा हो गया। उसने देखा कि थोड़ी देर के पश्चात् नाव जल के ऊपर आ गई एवं किनारे लग गई। नाव के यात्री भी अपने साथ एक दिगम्बर मानव को देखकर आश्चर्यचकित थे। स्वामीजी नाव के रुकते ही उस पर से आकर घाट पर पुनः बैठ गये। स्वामी जी के घाट पर पहुँचते ही उपरोक्त ब्राह्मण ने साष्टांग प्रणाम किया और मन ही मन उनसे इस घटना के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हेतु प्रार्थना करने लगा। स्वामी जी ने उसके मनोभाव को समझ लिया एवं बोले, इस घटना से तुम इतने चकित क्यों हो रहे हो ? भगवान स्वयं इस शरीर में निवास करते हैं। जो प्राणी उन्हें जानने की इच्छा करता है,

उनकी कृपा से उन्हें ज्ञान आता है और फिर उसके पश्चात् उसके लिये संसार में कुछ भी असम्भव नहीं रहता। इतना कहने के पश्चात् स्वामी जी ने ब्राह्मण को आशीर्वाद देकर विदा किया।

इसके पश्चात स्वामी जी माघ के महीने में प्रयागधाम को छोड़कर काशी पधारे और आप अस्सीघाट पर स्थित महात्मा तुलसीदास के बगीचे में निवास करने लगे। यहां निवास-काल के समय आप लोलार्क कुण्ड पर कभी-कभी आया करते थे। इसी कुण्ड पर आपने कुष्ठ-रोग से परेशान ब्रह्मसिंह नामक एक बधिर व्यक्ति को केवल स्पर्शमात्र से ठीक कर दिया। इसके बाद आपने बाबा वेद व्यास जी के आश्रम को अपना निवासस्थान बनाया तथा पुनः हनुमान घाट पर निवास करने लगे। स्वामी जी खाने-पीने में किसी प्रकार का विचार नहीं किया करते थे। एक समय काशी में ही किसी दुष्ट ने उन्हें चूना घोलकर पिला दिया और थोड़ी ही देर पश्चात स्वामी जी ने उसके सामने ही लघुशंका करके चूना और पानी अलग-अलग निकाल दिया। स्वामी जी कभी तेज जाड़े के समय अत्यधिक देर तक शीतल जल में पड़े रहते तो कभी प्रचण्ड धूप में गरम बालुका में समाधि लगाते। आप निर्वस्त्र रहा करते थे। इसलिये कई पुलिस कर्मचारी उन्हें जिले के अधिकारी के पास ले गये। अधिकारी ने इन्हें वस्त्र पहनने का आदेश दिया, उसने इन्हें नकली साधु की उपाधि दी और जेल में बन्द करने का आदेश दिया। स्वामी जी को जेल में बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन जेल के अधिकारी ने देखा कि स्वामी जी जेल की कोठरी से बाहर टहल रहे हैं, कोठरी में ताला ज्यों का त्यों लगा ही है और कोठरी में चौखट तक पानी लगा है। जेल अधिकारी ने पूछा कोठरी में पानी कैसे भरा है और तुम बाहर कैसे आये? स्वामी जी ने मुस्कराते हुये कहा, "रात में जोर से लघुशंका लगी थी, लघुशंका कर दिया और बाहर निकल आया।" इसके पश्चात् अधिकारियों को इनकी शक्ति का कुछ परिचय मिला और उन्होंने इनके स्वतन्त्र घूमने पर कोई आपत्ति नहीं की। उन्होंने कहा, तुम किसी की आत्मा को बन्द करके नहीं रख सकते।

तदनन्तर कुछ समय तक आपने बाबा विश्वनाथ के मन्दिर के पास दशाश्वमेध घाट पर निवास किया, इसके पश्चात् आप पञ्चगंगा घाट पर स्थित बिन्दुमाधव के मन्दिर के निकट मंगल भट्ट नामक दाक्षिणी ब्राह्मण के घर में निवास करने लगे। इसके पश्चात् वहीं इनका निवास स्थान बना रहा। इसी समय की एक घटना का वर्णन इस प्रकार है। एक

[शेष पृष्ठ ४८ पर]

गुरुपूर्णिमावसरे गुरूणां गुरवे श्रीः श्रीऽनन्त श्री विभूषिताय
योगयोगेश्वराय नमन-पुरस्सरा

❀ मे शब्द सुमन निबद्धाः काव्याञ्जलयः ❀

(रचनाकार— श्री पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा बादशाह कॉलोनी, लखनऊ)

क्वास्ति सा मे गुरो ! मेधा,
या त्वां मेधाविनं प्रति ।
प्रवदेम गिरां शं कां,
कोपहासाय मे भवेत् ॥१॥

क्व चाहं विषयासक्तः,
विषयच्युतवान् भवान् ।
संसारासारतां ज्ञात्वा,
लीनोऽहं ब्रह्मलीनस्त्वम् ॥२॥

प्राप्य पुण्योदयेनाद्य,
सद्गुरुं त्वादृशं प्रभो !
मे मतिः स्थिरतां यातु,
जातु भावुक काम्यया ॥३॥

संख्ये यास्ते गुणा नैव,
स्वाल्पज्ञो गणयेदिह ।
ये ये यत्रापि कुत्रापि,
सर्वे सन्निहितास्त्वयि ॥४॥

प्रभो ! मदीया महतीह कांक्षा, त्वदीय चरणौ शरणं भवेन्मे ।
एतत् तदैवेह सुशक्यतां व्रजेत, यदा त्वदीयास्तिदयाममोपरि ॥

योग-चिकित्सा

श्री गिरीशदेव वर्मा

सर्वांगासन

अब हम सर्वांगासन को ठीक प्रकार से करने का ढंग बतायेंगे। इस आसन को करने के लिए पहले चित्त लेट जाना चाहिए। नीचे कम्बल और उसके ऊपर एक सफेद चादर बिछा लेना चाहिये। यदि बिछावन सख्त होगा तो आसन को देर तक करने में कष्ट होगा। यह ध्यान रहे कि खाली चटाई या मोटे गद्दे पर कोई आसन नहीं करना चाहिये। इससे मेरुदण्ड में विकार आ जाता है। अतः कम्बल का बिछावन ही आसन के लिए उपयुक्त है।

हम पहिले ही बता आये हैं कि सर्वांगासन को करने का ठीक समय सायंकाल शौच के बाद है। उस समय पेट भरा नहीं होना चाहिये। जहाँ यह आसन किया जाय, वह स्थान खुला हुआ हो उसमें शुद्ध वायु का आवागमन हो। शान्त वातावरण हो, उस स्थान पर किसी के आने जाने या बच्चों के खेल कूद करने की सम्भावना न हो। हर साधक को ध्यान रखना चाहिये कि आसनों में स्थिरता होनी चाहिये। व्यायाम में शरीर के अंग बार बार हिलते रहते हैं, किन्तु आसन की पूर्ण स्थिति में शरीर स्थिर हो जाना चाहिये और सुख अनुभव करना चाहिये। यदि आसन गलत ढंग से किया जायगा तो शरीर को कष्ट अनुभव होने लगेगा और इससे लाभ के बजाय हानि ही होगी।

साधक को एक नरम बिछावन पर चित्त लेट जाना चाहिये। हाथ बगल में रहें। अब धीरे धीरे दोनों पैरों को कमर से उठाकर समकोण बनाना चाहिये। चूतड़ भूमि से लगे रहें। घुटनों में झुकाव न हो। पांव तने रहें। इसके बाद दोनों पांवों के साथ धड़ को भी उठाना चाहिये। सिर व गरदन जमीन से लिले रहें। दोनों हाथों से धड़ को पकड़ लेना चाहिये। ठोड़ी छाती से मिल जावे। दोनों पांव सीधे रहें। पूर्ण स्थिति चित्र में देखें:—

सर्वांगासन

इस आसन को पूर्ण स्थिति में आने पर मन को गल ग्रन्थि (Thyroid) पर केन्द्री भूत करना चाहिये। जो लोग शारीरिक रूप से कमजोर हों उन्हें इस आसन को बहुत धीरे-धीरे करना चाहिये और शुरू में आधे मिनट से अधिक नहीं करना चाहिये। जैसे-जैसे गल ग्रन्थियां मजबूत होती जांय, आसन का समय बढ़ाता जाय और पूर्ण लाभ उठाने के लिए इसको नित्य आध घण्टे तक करना चाहिये। इस आसन से शरीर के निम्न अंगों पर विशेष प्रभाव पड़ता है—

हृदय के चारों कोष्ठक, रक्तवाहिनी नलिकायें, मस्तिष्क, गल ग्रन्थियां (thyroids), उप गल ग्रन्थियां (para thyroids) मेरुदण्ड की पाँचवीं व छटी गुरियां, फेफड़े, यकृत, प्लीहा, पाचन संस्थान, अण्डकोष, मूत्राशय व गर्भाशय। यदि देखा जाय तो मालूम होगा कि यह आसन शरीर के सभी मुख्य अंगों पर प्रभाव डालता है इसीलिए इसका नाम सर्वांगासन रखा गया है।

हमारे ऋषि मुनियों द्वारा मानव जाति को दिया गया यह महानतम प्रसाद है। सर्वांगासन सभी आसनों की माता है। जिस प्रकार मां घर में शांति और सुख के लिए प्रयत्न करती है उसी प्रकार यह आसन मानव शरीर के सुख और शांति के लिये कोशिश करता है। अनेक सर्व साधारण रोगों के लिये यह रामबाण औषधि है। मानव शरीर मे अनेक अंतःस्रावक अवयव और नली हीन ग्रन्थियां हैं जो रक्त में निमज्जित हैं। रक्त से पौष्टिक तत्व ग्रहण करती हैं और संतुलित तथा पूर्ण विकसित शरीर एवं मस्तिष्क के उचित व्यापार के लिये रासायनिक तत्व को अलगाती हैं। यदि ग्रन्थियां अपने व्यापार को उचित रीति से करने में असमर्थ रहेंगी तो उन्हें जितनी मात्रा में रासायनिक तत्व उत्पन्न करना आवश्यक है, उतना वे नहीं कर पायेंगी और शरीर का ह्रास होने लगेगा। अनेक आसन ग्रन्थियों को अत्यन्त आश्चर्यजनक रीति से सीधे प्रभावित करते है और उचित रीति से कार्य करने में उनकी मदद करते हैं। इस जालन्धर बन्ध से रक्त पूर्ति में वृद्धि होने के कारण सर्वांगासन ग्रीवा प्रदेश में स्थित कण्ठ ग्रन्थियों एवं उपग्रन्थियों को इसी प्रकार प्रभावित करता है। शरीर उल्टा होने के कारण आकर्षण के प्रभाव से बिना तनाव के नाड़ियों का रक्त हृदय की ओर प्रवाहित होता है। गर्दन तथा छाती के चारों ओर शुद्ध रक्त प्रवाहित होने लगता है। परिणाम स्वरूप हांफनी, हृदय की धड़कन, श्वास रोग, श्वास नलिका दाह तथा गले के रोगों से पीड़ित लोगों को आराम मिलता है। इस स्थिति में सिर के स्थिर रहने तथा जालन्धर

बन्ध से रक्त पूर्ति नियमित हो जाती है। सर दर्द पुराना भी क्यों न हो, चला जाता है। इस आसन का सतत अभ्यास साधारण सर्दी तथा नासिका के अन्य रोगों को निमूल करता है। नाड़ियों पर इस आसन के शान्ति-कारक प्रभाव के कारण अधिक तनाव, संताप चिड़चिड़ापन, नाड़ियों की दुर्बलता तथा निद्रा नाश से पीड़ित व्यक्ति रोग मुक्त होते हैं। शरीर भार में परिवर्तन के कारण उदर के अवयव प्रभावित होते हैं जिससे बड़ी आंत की हलचल सहज होती है तथा कोष्ठ बद्धता नष्ट होती है। इससे पेट एवं अंतड़ियों के व्रण तथा उदर और वृहद अन्त्र दाह की गम्भीर वेदना से पीड़ित व्यक्तियों को भी आराम पहुँचता है। इस आसन की विशेषता यह है कि थोरस के सबल होने से शरीर प्रणाली टाक्सिन से मुक्त होती है और व्यक्ति पूर्ण उत्साह का अनुभव करता है। मूत्राशय की अव्यवस्था गर्भाशय का स्थलान्तर, मासिक ऋतु-स्राव की पीड़ा, अर्श (बवासीर) तथा हार्निया के लिए इस आसन को लाभप्रद बतलाया गया है। अपस्मार (मिरगी), जीवन शक्ति की न्यूनता तथा रक्त क्षय को दूर करने के लिये भी यह आसन मदद करता है। यदि मनुष्य नियमित रूप से इस आसन का अभ्यास करता है तो वह नई चैतन्यता तथा नई शक्ति का अनुभव करता है। उसमें नये जीवन का संचार होगा, उसके मन को शान्ति मिलेगी और वह जीवन के आनन्द का अनुभव करेगा। लम्बी बीमारी के बाद प्रतिदिन इस आसन का नियमित अभ्यास खोई हुई शक्ति वापस लाता है।

यह आसन विभिन्न अङ्गों पर किस प्रकार प्रभाव डालता है इसके सम्बन्ध में हम आगे वैज्ञानिक आधार पर चर्चा करेंगे। अभी यह बता देना जरूरी है कि इस आसन से पूर्ण-लाभ उठाने के लिये इसका पूरक आसन मत्स्यासन भी करना अति आवश्यक है। मत्स्यासन करने का ढङ्ग निम्न प्रकार है—

मत्स्यासन—

मत्स्य का अर्थ मछली है। इस आसन में मछली की तरह पानी पर तैरा जा सकता है। भगवान का एक मत्स्यावतार भी हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि एक समय पृथ्वी जलमय हो गई और जल प्रलय से डूबने लगी। उस समय भगवान ने मत्स्यावतार धारण करके पृथिवी का उद्धार किया। कदाचित भगवान के उसी काल्पनिक रूप के आधार पर इस आसन का आविष्कार किया हो। इस आसन को निम्न ढङ्ग से करें—

पद्मासन में बैठें। दोनों हाथों से पाँव के दोनों अंगूठों को पकड़ लें। अब पीठ के बल

पड़ जाय। श्वास छोड़ें, गर्दन को पीछे करते हुए पीछे ताकें और सीने को ऊपर उठाते हुये पीठ का अर्ध मण्डल (मेहराब) बनायें। पूरी स्थिति चित्र में देखें –

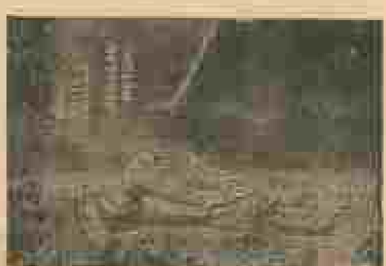

मत्स्यासन

यह आसन सर्वांगासन का उलटा है। सर्वांगासन में गर्दन झुकाकर छाती से मिलाई जाती है और मत्स्यासन में गर्दन से पीछे देखा जाता है और गले के कुल नस नाड़ियों में तनाव आ जाता है। इस आसन में पृष्ठ-प्रदेश पूरी तरह ताना जाता है और सीना अच्छी तरह फैलता है। श्वासोच्छ्वास पर्याप्त मात्रा में होने लगता है। गर्दन के तनने के कारण गल ग्रन्थियां (Thyroids) और उप गल ग्रन्थियां (para-thyroids) प्रभावित होती हैं और उनको रक्त का विशेष लाभ मिलता है। वस्ति प्रदेश की सन्धियां लचकीली होती हैं। यह आसन दाहयुक्त और स्रावयुक्त अर्श (बवासीर) को लाभ करता है।

मत्स्यासन सर्वांगासन का पूरक आसन है। अतः सर्वांगासन करने के तुरन्त बाद मत्स्यासन को करना चाहिए। किन्तु दोनों आसनों के करने के समय में अन्तर है। यदि सर्वांगासन पांच मिनट किया जावे तो मत्स्यासन एक मिनट किया जावे। इसका मतलब यह हुआ कि सर्वांगासन से एक बटा पांच समय में मत्स्यासन करना चाहिये।

यह दोनों आसन किस प्रकार शरीर की ग्रन्थियों को प्रभावित करते हैं, इस सम्बन्ध में शरीर रचना की चर्चा करते हुए उनके लाभों का वर्णन हम आगे करेंगे।

—कामना को महाव्याधि समझो, अज्ञान को सर्वोपरि शत्रु समझो, क्रोध को एक आग समझो, ज्ञान को सर्वोपरि सहायक समझो। धनी हो तो दानी बनो, दरिद्र हो तो तपस्वी बनो। दुःखी हो तो त्यागी बनो, सुखी हो तो उदार सेवक बनो और यथार्थ ज्ञानी हो तो स्वामी बनो।

—तुम्हारा वर्तमान जीवन तुम्हारे बीते हुए जीवन का फल है और भविष्य जीवन का बीज है। यह समझते हुए अपने वर्तमान जीवन में भविष्य के सुधार के लिये सदा सावधान रहो। विवेक पूर्वक कर्त्तव्य-पालन में तत्पर रहो, क्योंकि इसीसे सबको उच्चातिउच्च सफलता प्राप्त होती है।

❈ सिद्धपथ-पाथेय ❈

के डा० श्री विजयसिंह, गोरखपुर

लेखमाला के प्रथम लेख में शक्तिपात विधि से कैसे अपूर्व ढंग से साधक को साधना राज्य में प्रवेश मिलता है व श्री गुरुदेव-शक्ति कैसे साधक में अन्तर्निहित कुण्डलिनी को जागृत करके चक्र-भेदन कराते हुये साधक को इष्टाभाव में आरूढ़ कर देती है। साथ ही साथ इस विहंगम पथ को सफलतापूर्वक तय करने के लिए साधक की क्या पात्रता होनी चाहिये यह भी दिग्दर्शित किया गया है। सिद्धों का सम्पूर्ण समाज उस व्यक्ति को अभ्युत्थान देने हेतु तत्पर रहता है जो सिद्धानुशासन को सर्वोन्मुखी मान्यता अपने जीवन में देता है। किसी न किसी भाँति ज्ञानमार्गीय भक्तमार्गीय इत्यादि सभी को गुरु तत्व की अपरिहार्यता स्वीकार करनी पड़ती है। साधना रहस्य को उजागर करते हुये सन्त तुलसीदास रामचरितमानस में श्री गुरु-शक्ति को दर्शाते हुये कहते हैं—

> श्रीगुरु-पद नख मनि गन ज्योती।
> सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
> दलन मोह तम हंस प्रकासू।
> बड़े भाग्य उर आवहिं जासू॥
> उघरहिं विमल विलोचन हिय के।
> मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के॥
> सूझहिं राम चरित मणि मानिक।
> गुप्त प्रकट जेहि जो जोहि खानिक॥
> यथा सुअंजन अंजि दृग। साधक सिद्ध सुजान॥
> कौतुक देखहिं शैल वन। भूतल भूरि निधान॥

इन्हीं अनुभव गम्य संकेतों को अनोखे ढंग से, स्वानुभव में डूबे हुये कलम से, स्वामी मुक्तानन्द जी ने निर्देशित किया है 'चिद्शक्ति विलास' में। श्री गुरुदेव व्यक्ति विशेष नहीं होते, नाम-रूप बद्ध सत्ता का नाम सद्गुरुतत्व नहीं है। अतः गुरु वाणी समान है। इस पुस्तक को पढ़ते हुये लगता है स्वयं अपने सद्गुरु की की ही वाणी उद्बोधित हो रही है। तभी तो स्वामी जी ने कहा है— सिद्धों के सन्तान! तुम्हें भी अवश्यंभावी सिद्ध ही होना है। सिद्धों की भाषा एक है। भाव एक है। लोक भी एक है—सिद्ध लोक।

सद्गुरु कृपा से जो अनुभूति राज्य में प्रवेश पा गये हैं उन्हें बगुला ध्यान से बचना चाहिए। स्वामी जी कहते हैं सिद्ध विद्यार्थियो तुम्हारा ध्यान सच्चा होना चाहिए। केवल

मात्र प्रशंसा या मान-बड़ाई का पुजारी बनकरके कपटी, ठग एवं दम्भी नहीं होना चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है तो वह अपने को ही धोखा देता है। दम्भी की जब परीक्षा होती है तब उसे उत्तीर्ण होना कठिन हो जाता है। ध्यान में भावपूर्ण होना आवश्यक है। तुम्हें याद रखना चाहिए कि तुम्हारा साधना-पथ अच्छा हो। उसमें सत्यता हो। क्योंकि अन्तरात्म रूप से गुरुशक्ति सब कुछ देखती है। एक अच्छे शक्तिपात करने वाले योगी हैं। वे अपने अनुयायियों को खड़े-खड़े ध्यान कराते हैं। वे जब कहते हैं 'दिया' ऐसा कहते ही सबको वेग आ जाता है। कोई रोता है कोई हंसता है, कोई चिल्लाता है तो कोई नाचता है। एक घण्टा व्यतीत होने पर योगी कहते हैं 'लिया।' तब सबके सब पूर्ण स्वस्थ होकर ध्यान से उठ जाते हैं। यदि एक ऐसे शब्द का उपयोग करने पर कोई न उठा तो उनको कहना पड़ता है कि उठो माधव जी उठो उद्धव जी और उसे ध्यान के आनन्द नहीं समझा जाता। उनका कहना है कि जब मैं अपनी शक्ति अपने अधिकार में 'दिया' कहकर दिया करता हूँ तब उसको ध्यान की क्रियायें होती हैं। जब मैं 'लिया' बोलकर शक्ति को वापस ले लेता हूँ तब भी यदि कोई नहीं उठता तो वह शक्ति के प्रभाव के कारण नहीं बल्कि इसलिये कि वह दम्भी है पाखण्डी है उनका ध्यान शाबाशी पाने का ध्यान है। ऐसा ध्यान आत्मा का ध्यान नहीं है। ऐसा ध्यान सद्गुरु तत्व का ध्यान नहीं है। ऐसे ध्यान को कविजन बगुला ध्यान कहते हैं। ऐसे ध्यान से ज्योति-दर्शन कैसे होगा? ध्यान करना वासनाओं का और चाहना समाज का, यह कैसे संभव होगा? जिसका ध्यान करोगे उसी को पाओगे। यदि तुम गुरु के होके रहोगे तो गुरु शक्ति भी तुम में उतने ही प्रमाण में रहेगी। जो जिसका ध्यान करता है उसको वही मिलता है। तुम्हारी भावना, तुम्हारे अन्तःकरण की वृत्ति, तुम्हारी गुरु-निष्ठा और गुरु-सम्बन्धी जानकारी जिस प्रकार के होंगे, तुम्हारा ध्यान भी उसी प्रकार का और उतना ही फल देने वाला होगा। तुम्हारा ध्यान बगुले का होगा तो कैलाश से विमान नहीं आयेगा। इसलिये ध्यान करने वालों को सदिच्छा से, सावधानी से ध्यान करना चाहिए।

तुम देखो कि तुम्हारा ध्यान कहाँ स्थिर होता है और अन्य सम्बन्धों में तुम कितने उलझे हुए हो? जब मुक्तानन्द ध्यान करता था, उसका एक ही परम इष्ट था—भगवान श्री नित्यानन्द। वे ही उसके गुरु-भाई थे। वे ही उसकी गुरु-बहिन। उनको छोड़कर न किसी गुरु-भाई से प्रेम बढ़ाया, न ही किसी

गुरु-बहिन से सम्बन्ध चलाया। अपने भाई को छोड़कर किसी और को भाई बनाने, अपनी बहिन को छोड़कर किसी और को बहिन बनाने में क्या अर्थ है? क्या इस सबंध में कुटिलता, दोषवृत्ति नहीं है? संसार के सभी जन अपने भाई और बहिनें है, फिर एक में राग और दूसरे में द्वेष बढ़ाना कहाँ तक ठीक है? मुक्तानन्द के तो नित्यानन्द ही प्रिय स्वजन, प्यारे मित्र थे। उनको छोड़कर और कोई मित्र नहीं था। न तो उसने नित्यानन्द के नाम से किसी को फँसाया। वह सतत नित्यानन्द का ही ध्यान करता, नित्यानन्द का ही चिन्तन करता, नित्यानन्द में ही विचरता। उसने नित्यानन्द में ही पूर्ण सन्तोष, पूर्ण समाधान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण आनन्द, पूर्ण स्वस्वरूप ज्ञान पाया।

उस दिन एक छोटी उम्र की अच्छी ध्यान योगिनी ध्यान कर रही थी। मैं सहज ही ध्यान मन्दिर में गया। वह अपनी प्रेम भरी मुद्रा में आँखें भींचकर खिलखिला कर हँस रही थी। उसको हँसते देखकर मैंने समीप जाकर पूछा "तुम बहुत खुशी में हो ऐसा दीखता है, बड़ी हँसती हो, क्या बात है?" वह बोली "नहीं बाबा! मुझे ऐसा लगा कि आपको भोला समझकर कोई लोग ध्यान का आवेश लाकर आपको बनाने और धोखा देने का प्रयत्न करते हैं। मगर न आप बनते और न धोखा खाते हैं। आप न जानने का दिखावा करके उनको बनाते हैं, इसलिये मैं हँसती हूँ।" मैं बोला, "बेटी यह सच्ची बात है। उनको जो चाहिए, मैं वही देता हूँ।"

जब दूसरे लोग तुम्हारी आलोचना, निन्दा करते हों, तब उन्हें रोकने की चेष्टा न करो, क्योंकि इन्हीं सब बातों के द्वारा तुममें सद्गुणों की उन्नति होगी। यदि इन बातों का विरोध करोगे, तो प्रगति में रुकावट होगी। इस बात को स्मरण रखो कि संसार में सच्चे आग बुझाने वाले वे ही हैं, जिन्हें स्वयं कोई आग नहीं सता रही है। सच्ची शान्ति वही दे सकता है, जो कहीं भी आसक्त नहीं है।

यदि शक्ति चाहते हो, तो दुर्बलता को दूर करने के लिए तपस्वी बनो, मन का निरोध करो, विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियों का दमन करो, भोगों से विरक्त रहो।

शान्ति चाहते हो, तो संसार में जहां कहीं वस्तु और व्यक्ति के प्रति राग हो उसका त्याग करो।

पातंजल योग-शास्त्र के अनुसार

भुवनों का स्वरूप

डॉ० श्री रुद्रदेव त्रिपाठी एम. ए. पी.-एच.डी., डी.-लिट्

योगसूत्र द्वारा भुवनज्ञान का संकेत

महर्षि पतञ्जलि ने योग-दर्शन में 'भुवन-ज्ञानं सूर्ये संयमात्' (३/२६) इस सूत्र की रचना करके अभिव्यक्त किया है कि—"सूर्य में संयम करने से समस्त भुवनों-लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है।"

इस सूत्र से पूर्व पतञ्जलि ने सात्विक-प्रकाश का आलम्बन लेकर सूक्ष्म, व्यवहित एवं विप्रकृष्ट ज्ञानरूप सिद्धियों का संकेत किया है और उससे परमाणु, महत्तत्त्व आदि सूक्ष्म पदार्थों का, एवं सागर के अन्तराल में निहित रत्नादि, भूमि के गर्भ में छिपे खनि-आदि तथा दूर देश सुमेरु पर्वत के दूसरी ओर विद्यमान रसायन, औषधि आदि के ज्ञान की बात सिद्ध होती है।

अतः यह सूत्र भौतिक प्रकाश के विषय में संयम करने का संकेत देकर उससे भुवन-ज्ञान सिद्धि रूप फल की प्राप्ति बतलाती है।

टीकाकारों द्वारा पल्लवित भुवन-ज्ञान

'पातञ्जल-योगदर्शन' एक सूत्र ग्रन्थ है। अतः इसके सूत्रों की व्याख्या अत्यावश्यक मानी गई। आज तक संस्कृत भाषा में इस पर प्रायः २० टीकायें प्राप्त हैं। हिन्दी, गुज-राती, अंग्रेजी तथा अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं में इस ग्रन्थ के आधार पर पर्याप्त चिन्तन हुआ है और हो रहा है।

व्याख्याकारों में—व्यासदेव, वाचस्पति मिश्र, विज्ञान भिक्षु, नागेशभट्ट, हरिहरानन्द, आरण्यक तथा नारायणतीर्थ आदि ने 'भुवन-ज्ञान' के बारे में विस्तार से प्रतिपादन किया है।

वैसे उपर्युक्त व्याख्याकारों के विचारों में भुवनज्ञान सम्बन्धी विचार प्रायः समान ही है। तथापि 'योग सिद्धान्त चन्द्रिका'—व्याख्या के रचयिता श्री नारायणतीर्थ ने अपने पूर्व-वर्ती व्यास, वाचस्पति आदि के भुवन-ज्ञान सम्बन्धी विचारों को पर्याप्त विस्तार के साथ आगे बढ़ाया है। यही कारण है कि प्रस्तुत लेख के शीर्षक में 'योगशास्त्र के अनुसार' ऐसा लिखा गया है। वैसे भुवनों का वर्णन प्रायः पुराणों में ही अधिक उपलब्ध होता है।

योग-सिद्धान्त चन्द्रिका टीका में निर्दिष्ट भुवन-ज्ञान

टीकाकार नारायणतीर्थ ने उपर्युक्त सूत्र के संदर्भ में 'भुवन' शब्द का तात्पर्य लोक माना है। शास्त्रों में ब्रह्माण्ड शब्द के साथ महा शब्द जोड़कर 'महाब्रह्माण्ड' को अनेक ब्रह्माण्डों का आधार माना है। अतः इस महाब्रह्माण्ड में अनेक संक्षिप्त ब्रह्माण्ड है और एक ब्रह्माण्ड चौदह भुवनों की समष्टि से निर्मित है।

इस दृष्टि से भूलोक को केन्द्र मानकर 'भूरादिसत्यान्तानि उपरितनानि' कहकर उसके ऊपर छह लोक माने गये हैं।

इनके नाम है– (१) भुवर्लोक, (२) स्वर्लोक, (३) महर्लोक, (४) जनलोक, (५) तपोलोक एवं (६) सत्यलोक।

ये ऊपर स्थित होने से 'ऊर्ध्वलोक' भी कहे जाते हैं और एक दूसरे से नीचे होने से वे सत्यलोक के नीचे वाले लोक 'अधोलोक' भी माने जा सकते हैं।

'अतलादिपातालान्तान्यधस्तनानि' के अनुसार भूलोक से नीचे सात लोक हैं जिनके नाम है—(१) अतललोक, (२) वितललोक, (३) सुतललोक, (४) तलातललोक, (५) महातललोक, (६) रसातललोक तथा (७) पाताललोक।१ ये सातों अधोलोक हैं।

इनमें भी पाताललोक से ऊर्ध्ववर्ती लोक ऊर्ध्वलोक कहे जा सकते हैं।

इन पाताललोकों के ऊपर जलावरण है। इनके ऊपर तथा भूमि के नीचे तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, कुम्भीपाक, मुलासिपत्र, वन-सूकर, मुखान्धकूप, कृमिभोजन, सदंश, प्रभु-मिवज्र, कण्टक, शाल्मलि, वैतरणी, प्रमोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्षण, सारमेयादन अवीचिरव, पानक्षार, कर्दम, रक्षोगण, भोजन-शूल, प्रोतदन्द, शूकावट, निरोधन, पर्यावर्तन, सूचीमुख आदि। इन सबसे मिलकर एक ब्रह्माण्डावयव का स्वरूप बनता है।

इसी प्रकार के असंख्य ब्रह्माण्डावयव महाब्रह्माण्ड में समाविष्ट है।२ उक्त ब्रह्माण्ड

१—अन्यत्र भी पृथ्वी के नीचे चौदह लोकों का वर्णन मिलता है। यथा सबसे नीचे (१) अवीचि, (२) महाकाल, (३) अम्बरीष, (४) रौरव, (५) महारौरव, (६) महाशूल, (७) अन्धतामिस्र आदि। कहीं पुराणों में २८ नरक भी बताये गये हैं वे ही ऊपर लिये हैं।

२—अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च। ईदृशानां तथा तत्र कोटि-कोटि शतानि च॥
(विष्णु पुराण)

अवयव का महाब्रह्माण्ड में उतना ही स्थान है जितना कि आकाश में जुगनू का।

ब्रह्माण्डमध्ये संक्षिप्तं ब्रह्माण्डं च व प्रधानस्यावयवो यथाकाशे खद्योतः। (सो. सि. खं. पृ. १२८)

भूलोक तथा उसके द्वीपादि

उपर्युक्त ब्रह्माण्डावयव में स्थित लोकों में भूलोक की अपनी विशिष्टता है। इसमें सात द्वीप हैं। मत्स्य एवं वायु आदि पुराणों में 'द्विरापत्वात् स्मृतो द्वीपः' (म. १२३/३५) (वायु. ४९/१३२) कहकर स्पष्ट किया गया है कि—'जिसके दोनों ओर जल हो वह द्वीप होता है।' किन्तु इन्हीं पुराणों में अन्यत्र 'द्वीपस्य मण्डली भावात्' कहकर द्वीप को मण्डलाकार भी बताया है।

सात द्वीप क्रमशः—'जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर' नाम वाले हैं। प्रत्येक द्वीप एक-एक समुद्र से आवेष्ठित है तथा वे दोनों वलयाकार हैं।

वलयाकार वाले इन द्वीपों में 'जम्बू-द्वीप' की स्थापना मध्य में है।

स्वयं एक लक्ष योजन विस्तृत और दो लक्ष योजन विस्तृत लवण-समुद्र से वेष्टित इस जम्बूद्वीप के मध्य में मेरु-सुमेरु पर्वत है।

सुमेरु पर्वत की ऊँचाई ८४ हजार योजन है। यह शिरोभाग में ३२ हजार योजन तथा मूल से १६ हजार योजन विस्तार वाला है।

सुमेरु के चार शिखर हैं-पूर्व में रजतमय दक्षिण में वैदूर्यमणिमय, पश्चिम में स्फटिक का एवं और उत्तर में हेममणिमय है।

सुमेरु की उत्तर दिशा में तीन पर्वत हैं—नील, श्वेत तथा शृंगवान्। इन तीनों का विस्तार दो-दो सहस्र योजन है। वैदुर्यमणि की कान्ति वाले नील पर्वत पर ब्रह्मर्षि, रजताभामय श्वेत पर्वत पर देवासुर तथा हेमरत्नादिमय शृंगवान् पर्वत पर सपत्नीक देवगण रहते हैं।

इन तीनों पर्वतों के मध्य एक-एक वर्ष है जो क्रमशः रमणक, हिरण्यक तथा उत्तरकुरु नाम से विख्यात हैं। प्रत्येक वर्ष नौ-नौ हजार योजन विस्तार वाला है।

उत्तरकुरु में ऐसे दिव्य वृक्ष हैं जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं। हेम तथा सुवर्ण कण की भूमि वाले इस वर्ष में तेरह हजार वर्ष की आयु वाले देवगण निवास करते हैं।

हिरण्य वर्ष के देवताओं की आयु ग्यारह हजार वर्ष की है। माया और मति इनके आधीन रहते हैं। ये अपनी स्त्रियों सहित विहार करते हैं।

रमणक वर्ष में मनुष्यों का आवास है।

पुण्य कर्मों के कारण यहाँ के निवासी दस हजार वर्ष पर्यन्त प्राण धारण करते हुए सुख से रहते हैं। यह मनुष्यों की भोग-भूमि है।

सुमेरु के दक्षिण भाग में 'निषध, हेमकूट तथा हिमशैल' नामक तीन पर्वत हैं। यहाँ सर्प, नाग, गन्धर्व आदि दिव्य योनियाँ रहती हैं।

हेमकूट पर्वत पर गुह्य-जगत के लोग रहते हैं। ये पर्वत भी दो-दो सहस्रयोजन विस्तृत हैं।

इन पर्वतों के मध्य भाग में एक-एक वर्ष है जिनके नाम क्रमशः हरिवर्ष, किंपुरुष और भारतवर्ष है। प्रत्येक वर्ष का विस्तार नौ-नौ हजार योजन है।

हरिवर्ष में प्रह्लाद के अनुयायी दैत्य, दानव, नृसिंहादि निवास करते हैं।

किंपुरुष वर्ष में किंपुरुष, गन्धर्व आदि के साथ हनुमान प्रभृति रहते हैं। ये अष्टादश पुराण, इतिहास आदि के द्वारा श्रीराम का गुणगान करते हैं।

भारतवर्ष में निवास करने वाले मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मानुसार स्वर्ग नरक अथवा मोक्ष के अधिकारी होते हैं। अन्य खण्डों की भाँति यह केवल भोग भूमि नहीं है, अपितु कर्म भूमि भी है।

यहाँ बहने वाली गंगा आदि नदियों में स्नान करके पुण्यात्मायें पापकालुष्य को दूर करती हुई अपने को कृतकृत्य मानती हैं।

ये आत्मायें विन्ध्यादि पर्वतों की चोटियों पर चढ़कर भगवद्भक्ति में निमग्न रहती हैं। दूसरी ओर नारकीय दुरात्मायें काम-क्रोधादि से अपनी आत्मा को मलिन करती हुई व्यभिचार प्रिय होती हैं जो कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करती हैं।

सुमेरु पर्वत की पूर्व दिशा में दो हजार योजन विस्तृत माल्यवान् पर्वत है। इससे आगे समुद्र पर्यन्त विस्तृत भद्राश्व वर्ष है, जो इकत्तीस हजार योजन विस्तृत है, यहाँ शक्ति और तेजः सम्पन्न दस सहस्र-जीवी मनुष्य निवास करते हैं। सिद्ध-चारण इनकी शुश्रूषा करते हैं और ये लोग वन विहार प्रिय हैं।

सुमेरु के पश्चिम में दो सहस्र योजन विस्तृत गन्धमादन पर्वत है। इस पर अनेक सेवकों के सहित कुबेर का निवास है जो अनेक सुन्दर ललनाओं के साथ आमोद-प्रमोद मनाते रहते हैं।

यहाँ इकत्तीस हजार योजन विस्तृत हेतुमाल देश है। यह भय एवं शोक रहित दस सहस्रजीवी मनुष्यों की आवास भूमि है।

सुमेरु के चारों ओर अठारह हजार योजन विस्तृत इलावृत वर्ष।

इस प्रकार जम्बूद्वीप में कुल नौ वर्ष एवं नौ पर्वत हैं।

सम्पूर्ण जम्बूद्वीप पूर्व से पश्चिम की ओर अथवा उत्तर से दक्षिण की ओर एक लक्ष योजन विस्तृत है।

अन्य द्वीप और उनकी विशेषतायें

शास्त्रों में 'सप्तद्वीप वसुन्धरा' कहा गया है। तदनुसार प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप है तथा शेष अन्य प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक एवं पुष्करद्वीप बतलाये हैं। इनका परिचय योग शास्त्रानुमोदित इस प्रकार है—

१—प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीप से दुगुने परिणाम (दो लाख योजन) वाला यह द्वीप है। यह चार लक्ष योजन वाले इक्षुरस-समुद्र से आवेष्ठित है।

इसमें शिव, यवस्, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय नामक सात वर्षों से युक्त है।

तथा इन वर्षों में मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव तथा मेघमाल नाम सात पर्वत हैं।

यहाँ अरुणा, नृम्णा, अंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा तथा सत्यम्भरा नामक सात नदियाँ बहती हैं। इन नदियों का जल स्पर्शमात्र से मनुष्यों के पाप को दूर करता है। यहाँ के निवासी सूर्योपासक हैं और वे एक सहस्र वर्ष जीवी होकर प्रजा आदि से परिपूर्ण होते हैं।

२—शाल्मल द्वीप-यह द्वीप प्लक्ष द्वीप से द्विगुणित विस्तारवाली है तथा अपने से दुगुने आयाम वाले सुरा समुद्र से आवेष्टित है।

इसमें भी सात वर्ष, सात पर्वत और सात नदियाँ हैं।

जिनके नाम इस प्रकार हैं- सात वर्ष—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देव, पारिभद्र, आप्यायन तथा अविज्ञात।

सात पर्वतों के नाम हैं—स्वरस, शतशृंग वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष तथा सहस्रस्तुति।

अनुमति, सिनीवाली, सरस्वति, कुहु, रजनी, नन्दा तथा राका नामक सात नदियाँ प्रमुख हैं। यहाँ के निवासी सोमोपासक हैं।

३—कुशद्वीप—शाल्मल द्वीप से दुगुने आयाम वाला यह द्वीप आठ लाख योजन विस्तृत है और सोलह लाख योजन विस्तार वाले घृत-समुद्र से आवेष्ठित है।

पूर्ववत् यहाँ 'वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विविक्त एवं नामदेव' ऐसे सात वर्ष हैं।

चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोम और द्रविण नामक सात पर्वतों की यहाँ स्थिति है।

यहाँ की नदियों के नाम घृतकुल्या, रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, देवगर्भा, घृत-

च्युता और मन्त्रमाला है और यहां के निवासी अग्नि की उपासना करते है।

४—क्रौञ्चद्वीप—कुशद्वीप से द्विगुण आयाम वाला यह द्वीप अपने से द्विगुणित क्षीरोदधि से परिवेष्टित है।

यहां के सात वर्ष—आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण तथा वनस्पति नाम से विख्यात हैं और शुक्र, वर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन एवं सर्वतोभद्र नाम से प्रसिद्ध सात पर्वतों की यहां स्थिति है। अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रवती और शुक्ला नामक नदियां इस द्वीप में बहती हैं तथा यहां के निवासी वरुण की उपासना करते हैं।

५—शाकद्वीप दधिसमुद्र से आवेष्टित यह द्वीप क्रौञ्चद्वीप से द्विगुणित आयाम वाला है।

तथा इसके सात वर्षों के नाम हैं—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा विश्वधारा।

ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्र स्रोत, देवपाल एवं महानस नामक सात पर्वतों से यह विभूषित है।

अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता पञ्चनदी, सहस्र स्तुति तथा निजधृति—ये सात नदियां यहां प्रवाहित होती हैं और यहां के प्राणी समाधि लगाकर प्राण की उपासना करते हैं।

६—पुष्कर द्वीप—स्वादूदक समुद्र से वलयाकारित यह द्वीप शाकद्वीप से दुगुना बड़ा है।

यहां मानसोत्तर नाम वाला केवल एक पर्वत है, जो कि एक अयुत योजन ऊंचा है।

इसके चारों ओर इन्द्र आदि लोकपालों के चार पुर हैं।

स्वादूदक समुद्र के आगे की भूमि एक ओर से एक करोड़ सत्तावन लाख पचास हजार आयाम वाली है।

यह भूमि लोकभूमि कहलाती है। इससे आगे लोकालोक पर्वत है और उससे आगे काञ्चनमयी अलौकिक देवताओं की क्रीडाभूमि है।

अन्य लोक और उनके स्वरूप

भू-लोक का परिचय हमने ऊपर दिखलाया है, इसके अतिरिक्त अन्य छह लोक और हैं जिनके नाम स्वरूपादि इस प्रकार हैं—

१—भुवर्लोक—भू-लोक के ऊपर यह लोक स्थित है। इसका दूसरा नाम 'अन्तरिक्ष' है। यहां ग्रह, नक्षत्र एवं तारागण ज्योतिश्चक्र में निबद्ध होकर सञ्चरण करते हैं।

२—स्वर्लोक—अन्तरिक्ष के ऊपर स्थित इस लोक को माहेन्द्रलोक भी कहते हैं।

यहां त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित, वशवर्ती तथा परिनिर्मित, वशवर्ती ऐसी छः देव जातियां हैं।

ये समस्त देव सिद्ध संकल्प तथा अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों से सम्पन्न होते हैं।

ये शरीर धारण में स्वतन्त्र हैं और एक कल्प पर्यन्त जीवित रहते हैं।

३—महर्लोक– 'प्राजापत्य-लोक' इसका दूसरा नाम है। यह स्वर्लोक के ऊपर है। यह कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अञ्जनाभ और प्रमिताभ संज्ञक पांच देव-जातियों की निवास-भूमि है। ये पञ्चमहाभूतों को वश में करने वाले, ध्यान प्रिय तथा कल्प-सहस्र आयु वाले होते हैं।

४—जनलोक–इसकी स्थिति महर्लोक के ऊपर है। यहां चार प्रकार के देव-समूह हैं– १-ब्रह्मपुरोहित २-ब्रह्मकायिक, ३-ब्रह्ममहाकायिक और ४-अमर। ये भूतेन्द्रिय-वशी हैं।

ब्रह्मपुरोहित दो हजार, ब्रह्मकायिक चार हजार, ब्रह्म महाकायिक आठ हजार तथा अमर संज्ञक देव सोलह हजार कल्प की आयु वाले होते हैं।

५—तपोलोक-जन लोक से ऊपर तपोलोक है, यहां अहंकार को वश में रखने वाले १. आभास्वर २. महाभास्वर तथा ३. सत्य महाभास्वर ऐसे तीन प्रकार के देव रहते हैं।

ये जन-लोक के देवताओं की अपेक्षा द्विगुण-द्विगुण आयुष्-वाले हैं और ये सभी ऊर्ध्वरेतस् होते हैं।

६—सत्यलोक-सब लोकों से ऊपर सत्य लोक है।

यह योगियों की निवास भूमि है। यहां के योगी चार प्रकार के हैं—१. अच्युत, २. शुद्ध निवास, ३. सत्याभ तथा ४. संज्ञासंज्ञी। ये चारों प्रकार के योगी क्रमशः सवितर्क सविचार, सानन्द और सास्मित समाधि सिद्ध हैं।

प्रणवोपासक इन योगियों की आयु सर्ग-पर्यन्त होती है।

भूलोक के अधोवर्ती लोक

१—अतल-लोक–भूलोक के नीचे यह लोक स्थित है। यहां मय-पुत्रादि असुर निवास करते हैं।

२—वितल-लोक– यह पूर्ववर्ती लोक के नीचे है।

यहां भगवान शिव पार्वती के साथ विहार करते हैं क्योंकि शिव हाटकी नदी के अधिपति माने गये हैं। यह नदी यहां प्रवाहित होती है।

यहां भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मार, ब्रह्म-राक्षस, कूष्माण्ड, विनायक आदि निवास करते हैं।

३—सुतल-लोक यह वितल-लोक से नीचे है। यहां भगवान् कृपा से अनुगृहीत, आत्म-समर्पण के अभिलाषी, प्रभु के प्रवर भक्त अपनी भक्त-मण्डली के साथ निवास करते हैं।

४—तलातल-लोक—उपर्युक्त लोक से नीचे इस लोक की स्थिति है।

यहां मायावी मय और उनके अनुचर रहते हैं।

५—महातल-लोक—यह तलातल के नीचे विद्यमान है।

तथा यहां तक्षकादि सर्पगणों की स्थिति है।

६—रसातल-लोक—इस लोक की स्थिति महातल के नीचे है।

यहाँ दैत्य, दानव, निवात, कवच प्रभृति रहते हैं।

७—पाताल-लोक—पूर्वोक्त सभी लोकों के नीचे यह लोक है।

यहाँ वासुकी आदि सर्पाधिराज सपरिवार निवास करते हैं।

उपसंहार

यद्यपि यह कहने वाले नास्तिक प्रायः बहुत से लोग हैं, जो ऐसे भुवन-विज्ञान को निराधार अथवा कल्पना-प्रसूत साहित्य की कोटि का मानते हैं, किन्तु जैसे-जैसे विज्ञान अपने पंख फैला रहा है, वैसे ही इस विज्ञान की सत्यता सम्मुख आ रही है। हजारों वर्षों से चली आ रही भारतीय संस्कृति में इस लोक-विज्ञान का महान आदर है।

प्रत्येक आस्तिक भारतीय इन लोकों का सादर-स्मरण अपने दैनिक और नैमित्तिक धार्मिक कृत्यों में करता आया है।

भारतवर्ष की महिमा का स्मरण इन लोकों के जानके बिना अपूर्ण ही कहा जाएगा।

जो लोक इस आर्ष विज्ञान को अनुपादेय मानते हैं, वे वस्तुतः दया के पात्र हैं।

क्योंकि उनका जीवन चार्वाक के सिद्धांतों के अनुसार केवल 'होटल में खाओ और हॉस्पीटल में मर जाओ' का ही अनुसरण कर रहा है।

अस्तु ! हमारा तो यही निवेदन है कि प्रत्येक विवेकी मानव को ऐसे तत्वों का अनुशीलन करते हुए सत्य की साधना में अग्रसर होना चाहिये।

गुरु शक्ति

शरीर की तो बात ही तुच्छ है, सद्गुरु तो अपना आजीवन कठोर तपस्या से प्राप्त अमूल्य पारमार्थिक धन भी शिष्य को बिना किसी हिचकिचाहट के, कुछ भी प्रतिदान की आशा न रखकर सम्पूर्णतः दे देते हैं। शिष्य यदि शुद्ध सत्व और यथार्थ ईश्वर परायण हो तो वह सद्गुरु के आध्यात्मिक शक्ति-संचार को भीतर ही भीतर अपने प्राणों में अनुभव कर सकता है, अथवा श्रद्धा और विश्वास के साथ गुरूपदिष्ट साधन पथ पर वह जितना ही आगे बढ़ता है और उसका चित्त जितना ही निर्मल होता जाता है उतना ही वह गुरु शक्ति की महिमा और उनकी कृपा को अपने हृदय में अनुभव कर सकता है।

— स्वामी विरजानन्द

भजन

❁ रचनाकार– श्री पं० प्राणनाथ शर्मा, चण्डीगढ़

चरणों में तेरे जीना–मरना,
अब दूर यहां से जाना क्या ?
एक बार जहां सिर झुक जाये
फिर सरको वहां से उठाना क्या ?
चरणों में तेरे बालक सारे
प्रभु शीश झुकाये बैठे हैं !
दो हुक्म हमें प्यारे सतगुरु
हम पेश करें नजराना क्या ? (१)
मन भी तेरा हम भी तेरे
हर स्वांस अमानत तेरी है !
जब नजर मेहर की हो ही गई
फिर दिलका यूँ घबराना क्या ? (२)
मन को भरमाने की खातिर
हमें बहुत बुलावे आते रहे ।
प्रभु प्यारे का सिर पर हाथ रहे
फिर और के दर पर जाना क्या ? (३)
किसी और गरज की खातिर तो,
हाथ ये अब उठते ही नहीं ।
जब दिल में कोई ख्वाहिश ही नहीं
तो दामन का फैलाना क्या ? (४)
जो प्यार में तेरे मिल जाये
वो कांटे फूल से बेहतर हैं ।
तेरा प्यार जो मेरे साथ रहे
तो गुलशन और वीराना क्या ? (५)

❋ ध्यान-योग तथा सिद्धियाँ ❋

❋ आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम-एड.

संचित पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप साधक को सर्व-सामर्थ्यवान् परम-कृपालु श्री सद्गुरु देव की कृपा से ही योग में सफलता मिला करती है। हठयोग, राजयोग, क्रियायोग, लययोग, भक्तियोग, नादयोग, भावातीत ध्यानयोग या निष्काम कर्मयोग—किसी भी प्रकार का योग क्यों न हो, बिना श्री गुरुदेव की कृपा के व्यक्ति उनमें सफल नहीं हो सकता। यह बात दूसरी है कि साधक ने इस जन्म में उतने पुण्य अर्जित न किये हों, उसके पूर्वजन्म के अर्जित पुण्यों के कारण उसे योगमार्ग तथा सिद्ध गुरु देव की प्राप्ति हो गई हो। योगमार्ग में कृपा का स्थान सर्वोच्च है तथापि बिना अभ्यास के स्थिति दृढ़ नहीं हो पाती। क्रिया-सिद्धि में काल सबसे बड़ा कारण माना गया है। जैसे आम का बीज कितना ही अच्छा हो, माली कितना ही चतुर हो एवं भूमि भी कितनी ही उर्वरा क्यों न हो, उस पर मधुर फल लगने में निरन्तर विकास का एक क्रम तथा समय का अन्तराल आवश्यक है। पहले बीज अंकुर बनेगा फिर शनैः शनैः पौधा होगा। उसकी उसकी देख-रेख तथा सुरक्षा होती रही तो शनैः शनैः यह पौधा ही वृक्ष तथा महान् वृक्ष बन जायेगा फिर एक दिन उस पर फल भी आ जायेंगे। फल भी एकदम मधुर नहीं होंगे। पहले खट्टे फल होंगे। वे ही समय पाकर मीठे हो जायेंगे और एक दिन ऐसा भी आयगा कि वे फल स्वतः डाल से अलग भी हो जायेंगे। काल का महत्व स्वीकार करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने योग सूत्र में निर्देश दिया कि—

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्येण सत्कारा-
सेवितो दृढभूमिर्भवति। (१/१४)

अर्थात् लम्बे समय तथा अनवरत, भावना-पूर्वक अभ्यास करते रहने से यह अभ्यास पक्का हो जाता है तथा उसका फल स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। अभ्यास का क्रम निरन्तर चलता चला जाय तो एक दिन साधक अपनी मंजिल पर अवश्य पहुँच जायेगा। मोक्ष तक पहुँचने के लिए अनेक जन्मों तक अभ्यास जारी रखना पड़ता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—

अनेक जन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिम्।

जिस प्रकार एक चित्रकार बड़ी लगन तथा बड़े धैर्य से चित्र बना पाता है, एक संगीतज्ञ अनवरत स्वर साधना के अभ्यास से मधुर गायन द्वारा श्रोताओं का मन मुग्ध कर पाता है उसी प्रकार योग साधना के लिए भी परम धैर्य, दृढ़ निश्चय तथा अनवरत अभ्यास अनिवार्य है। श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक किया गया अभ्यास फलदायी होता है। कर्म का अभीष्ट फल ही सिद्धि कहा गया है। कर्म का विधिपूर्वक अनुष्ठान करते-करते साधक में जो क्षमता अथवा सामर्थ्य विशेष तथा विभूतियां आ जाती हैं, उन्हें सिद्धि कहते हैं। सिद्धि से मन का उत्साह तथा प्रसन्नता द्विगुणित हो जाती है। अंग्रेजी की एक कहावत है—

Nothing succeds like success.

अर्थात् सफलता से बढ़कर मन की प्रसन्नता का और कोई उपाय नहीं है। विधिपूर्वक जो भी कर्म किया जायगा उसका अभीष्ट फल अवश्य सामने आयेगा। आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र गीता में कहते हैं—'क्षिप्रं हि मानुषेलोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।' अर्थात् मनुष्य लोक में विधि-विधानपूर्वक किये गये कर्मों (यज्ञ, दान तप आदि) से शीघ्र ही सिद्धि लाभ हो जाता है। कर्मों की उत्पत्ति के पांच प्रमुख कारण माने गये हैं—

अधिष्ठानं तथा कर्ता
करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा
दैवं चैवात्र पंचमम्॥
(गीता १८/१४)

अर्थात् प्रथम कारण अधिष्ठान है। शरीर ही सब कर्मों का आधार होने के कारण कर्मों का अधिष्ठान माना जाता है। द्वितीय कारण कर्त्ता अर्थात् शरीर में इन्द्रियों तथा चौबीस तत्वों को लेकर रहने वाला जीव है। जीव कर्म का अभिमानी होने के कारण कर्त्ता माना जाता है। तृतीय करण 11 इन्द्रियां हैं। यही करण है क्योंकि कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय तथा मन के बिना कोई कर्म सम्भव नहीं है। प्राण अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म आदि दशों प्राणों की क्रियायें तथा शक्तियां चौथा कारण है। इन्द्रियों और मन, बुद्धि के अभिमानी सूर्य, अग्नि, वायु तथा पूर्वजन्मकृत कर्म 'दैव' नामक कर्मों का पांचवां कारण माना जाता है। अच्छा या बुरा, सात्विक अथवा तामसिक कैसा भी कार्य किया जाय, उसके उपर्युक्त पांच ही कारण है। इनका ठीक ठीक संयोग हो जाय तथा अनवरत दृढ़ अभ्यास हो तो वह क्रिया सिद्धि देने वाली बन जाती है। कलियुग में तन्त्र द्वारा अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त करने के लिए सर्वत्र लोग नाना प्रकार की घोर, अघोर साधनायें करते दिख ई

पड़ते हैं। श्मशान में शव की छाती पर बैठ कर जप करने से लेकर बलि कर्म तथा जुगुप्सित पदार्थों का भक्षण तथा हवन तक करते हैं। यदि अभ्यास अनवरत साहस और धैर्य के साथ चल सका तो उन उन कर्मों से तामसी तथा राजसी शक्तियां अवश्य मिल जाती हैं। राक्षसों में इसी प्रकार की शक्तियां होती हैं जिनका उपयोग परपीड़ा के लिए होता है। देवों में जो शक्ति होती है उसका उपयोग आत्म-उद्धार तथा परोपकार के लिए होता है। यही अन्तर है साधन की पवित्रता तथा अपवित्रता द्वारा प्राप्त सिद्धियों का। योगाचार्यों ने सिद्धियों के दो क्रम माने हैं—मर्कट क्रम तथा काक क्रम। मर्कट क्रम में शनैः शनैः नियमपूर्वक एक ही शरीरसे योगाभ्यास करते-करते देर में सिद्धियाँ उदित होती हैं। यदि बिना सिद्धियों के उदित हुए बीच में ही प्रारब्ध कर्मवश देहपात हो गया तो पुनः अगले जन्म में नया शरीर धारण कर उसके द्वारा आगे का अभ्यास उसी प्रकार चलने लगता है जिस प्रकार कोई व्यक्ति कोई कार्य करते-करते सो जाय और सुबह जागकर पुनः जहाँ से कार्य अधूरा छोड़ा था वहीं से उसे करने लग जाय जब उसकी योग में निष्ठा हो जाती है तो सिद्धगुरु का उसे सान्निध्य भी मिल जाता है। पूर्वजन्म के किये अभ्यास के फलस्वरूप शीघ्र ही उसे सिद्धि मिल जाती है

इस क्रम को काक क्रम कहते हैं। मर्कट उछलता कूदता अधिक समय में किसी दूरस्थ स्थान तक पहुंच पायेगा। कौआ अपने पंखों की सहायता से उड़कर उस स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक जल्दी पहुंच जायगा। भगवान सदाशिव जगन्माता पार्वती जी को सिद्धि के क्रम का उपदेश देते हुए कर्म और अभ्यास की प्रधानता का प्रतिपादन करते हैं—

तस्मात्काकमताभ्यास्ति
त्वभ्यासास्य मतः परम्।
न कर्मणा विना देवि !
योगसिद्धिः प्रजायते ॥
ज्ञानं वा स्वर्गभोगो वा
पुण्यहीनैर्न लभ्यते।
तस्मात्कार्यं शद्वेयं यद्
यस्य यद्यद्धि साधनम् ॥
तेनैव प्राप्यते सिद्धिः
नान्यथा शिवभाषितम्।

अर्थात् काक क्रम से अच्छा अभ्यास और कोई नहीं है जिससे शीघ्र योग-सिद्धि प्राप्त हो। बिना कर्म के योग सिद्धि की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए। जैसा जिसका साधन और संयोग है वैसा-वैसा करने सेही सिद्धि होती है कर्मोपार्जित पुण्यों के बिना न तो ज्ञानही उपलब्ध हो सकता है और न स्वर्ग भोग। अतः सिद्धयोगके साधकको भी अभ्यासको उत्तरोत्तर

बढ़ाते जाना चाहिए। काक मत ही सिद्धयोग कहलाता है। इसे विहंगम गति भी कहा गया है। अभ्यास में दृढ़ता तथा लक्ष्य तक पहुँचने का विश्वास होना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण प्रसिद्ध है। दो साधक वट-वृक्ष के नीचे योग साधना में आरूढ़ थे। उधर से नारद जी आ रहे थे। साधकों की बढ़ी हुई जटाओं और मुख की दीप्ति को देखकर उनके मन में विचार आया कि ये दोनों बड़े तपस्वी मालूम हो रहे हैं। इनके पास चलकर इनसे हरिचर्चा कर मार्ग की थकावट दूर की जाय। नारद जी आकाश मार्ग से नीचे आकर उन साधकों के समक्ष खड़े हो गये। साधकों ने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। नारद जी ने 'नारायण, नारायण' कहकर साधकों से पूछा। तुम लोग कब से तपस्या कर रहे हो और तुम्हें क्या उपलब्धि हुई है। साधकों ने उत्तर दिया कि हम बचपन से ही पंचाग्नि तप कर रहे हैं। यह वृक्ष हमारे देखते-देखते ही विशालकाय हो गया है। हमारी जटायें पैर तक आ गई हैं। बस! इतनी ही हमारी उपलब्धि है। आत्म-साक्षात्कार की स्थिति का हमें संस्पर्श भी नहीं हुआ। हे देवर्षि! आपकी गति स्वर्ग-लोक, नरलोक तथा पाताल लोक में सर्वत्र है। आप कृपाकर भगवान के पास जाकर पूछिये कि हमारी मुक्ति में अभी कितना समय लगेगा?

नारद को दया आ गई। वे वैकुण्ठ में गये और उन तपस्वियों की बात उन्होंने भगवान से पूछी। भगवान ने कहा कि जिस वृक्ष के नीचे वे दोनों तपस्या कर रहे हैं उसमें जितने पत्ते हैं, उतने ही हजार वर्षों में उनकी मुक्ति हो जायगी बशर्ते वे इसी तरह साधना करते रहें। नारद जी ने आकर भगवान का सन्देश यथावत् उन तपस्वियों को सुना दिया। उनमें से एक साधक ने सन्देश सुनते ही अपना माथा ठोका और आसन कमण्डलु लेकर खड़ा हो गया। वह कहने लगा— इतना इन्तजार कौन करेगा? चलकर घर गृहस्थी का आनंद लूंगा। दूसरा साधक सन्देश सुनकर प्रसन्नता से बैठा रहा और अपनी साधना को तीव्र संवेग से करने लगा। थोड़े ही समय में उसके तप के प्रभाव से भगवान के हृदय में करुणा फूट पड़ी और उसे दर्शन देकर मुक्त कर दिया। पार्वती जी ने शंकर जी से पूछा—हे देवाधिदेव! अभी तो बहुत थोड़ा समय हुआ है और उस तपस्वी को मुक्ति हो गई। उसे तो कहा गया था कि पत्तों की संख्या के बराबर हजार वर्षों में उसकी मुक्ति होगी? यह कैसे? दूसरे साधक की तपस्या भी तो इसके बराबर थी? उसको कुछ भी क्यों नहीं मिला? भगवान शंकर बोले— प्रिये! एक में धैर्य और विश्वास था और दूसरे में अभ्यास का अहंकार भरा था। अतः फल प्राप्ति में

अन्तर हो गया। दूसरे साधक को यह विश्वास हो गया था कि मेरी मुक्ति अवश्य होगी और परम गुरु ईश्वर के वचनों पर विश्वास कर उसने पूर्णरूप से ईश्वर को आत्म-समर्पण कर दिया था। अतः कृपालु ईश्वर ने उसके स्वाध्याय से प्रसन्न होकर उसके अभिमत को तत्काल पूरा कर दिया।' पूर्ण आत्म-समर्पण होने पर तो अभ्यास भी एक ओर रखा रह जाता है। पर प्रत्येक से यह होता नहीं। अपने लिए कुछ न कुछ बचा कर हम रख ही लेते हैं। सुदामा ने जिस प्रकार चावलों की पोटली को बगल में छिपा लिया था उसी प्रकार हम निःसार संसारी वस्तुओं को अपना मानकर उनको अपना मन देते रहते हैं। अपना पूरा मन भगवान को नहीं दे पाते। यदि वे कृपा करें तो सुदामा की पोटली की तरह हमारी अहंता तथा ममता छीनकर स्वयं चबा जांय तो भी कल्याण हो सकता है। पर उसके लिए सुदामा जैसा भाव और उनके प्रति अपनेपन का का आधार चाहिए। हमारी स्थिति तो ऐसी है कि हम भगवान को नहीं चाहते। भगवान से चाहते हैं। घर, मकान, धन, पुत्र कलत्र चाहते हैं, ईश्वर को नहीं चाहते हैं और दोष देते हैं अपने मन को कि यह चञ्चल है। मन कहता है कि तुमने जिस-जिस को चाहा मैं वहाँ वहाँ लग गया हूँ। मेरी झूठी शिकायत क्यों करते हो। तुमने शुद्ध ईश्वर को नहीं चाहा तो मैं कैसे उन तक जा सकता हूँ।

प्रभुता को सब कोई भजै प्रभु को भजै न कोय।
जो कोई प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय॥

सिद्धियों के हेतु :—

भगवान पतञ्जलि ने सिद्धियों के पाँच कारण बतलाये हैं—

जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजा सिद्धयः। (यो. सू. ४/१)

जन्म से प्राप्त होने वाली तथा औषधि, मन्त्र, तप तथा समाधि से प्रादुर्भूत अनेक प्रकार की सिद्धियां हैं। पक्षियों का आकाश-गमन, पशुओं का जन्म लेते ही पानी में तैरने लगना आदि सिद्धियां पैतृक संस्कारों (जीन्स) के कारण जन्म से ही उन्हें स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। अच्छा रूप भी पूर्वजन्म के सुकर्मों फलस्वरूप मिलता है। देव शरीर और उसमें होने वाली अणिमादि ऐश्वर्य की सिद्धियां भी पूर्वजन्मों के पुण्यों से ही होती हैं। उनके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। भगवान पतञ्जलि देव ने विदेहलीन भवप्रत्यय योगियों में जन्म से ही योग प्रवृत्ति तथा तज्जन्य सिद्धियों का उदय माना है। "भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्।" इस सूत्र में विदेहलीन योगियों में जन्म को यौगिक सिद्धियों का कारण बताया है। व्यवहार में देखने में आता

है कि जो पैरों की ओर से पैदा होता है उसमें भूमिगत पदार्थों को देखने की शक्ति आ जाती है तथा उसके पैर के स्पर्श से बहुत से रोग ठीक होते हैं।

औषधि द्वारा सिद्धियां :—

दिव्य दृष्टि प्रदान करने वाले कई प्रकार के अञ्जनों का वर्णन आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है। तन्त्र-ग्रन्थों में भी ऐसी अनेकों जड़ी बूटियों का वर्णन है, जिनके पास रखने मात्र से विवादजय स्तम्भन तथा उच्चाटन जैसी क्रियायें सम्पन्न हो जाती हैं। दीपावलि के दिन गूलर के फूल को आधी रात्रि के समय प्राप्तकर सफेद सरसों के तेल में बत्ती बनाकर दीपक के प्रकाश में त्राटक से भूमिगत धन दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार सर्प की मणि के अनेकों प्रयोग हैं। पारद से निर्मित औषधियों के सेवन से कायाकल्प हो जाता है। रविवार या गुरुवार को पुष्य नक्षत्र हो और उस दिन त्रयोदशी भी हो तो और उत्तम है, उस दिन निम्नलिखित औषधियों को तन्त्रोक्त विधि से अभिमन्त्रित कर रख ले। विवाद के समय में उन्हें मुख में या मस्तक पर धारण करने से जय होती है।

चक्रमर्दक गोजिह्वा
शिखिचूडा जटास्वपि।
एकैका वादजयदा
पुष्यार्कोद्धृतास्य मूर्धगा॥
—समयसार

अर्थात् चकमर्द (पमाड़) गोजिह्वा (गोभी) शिखिचूडा (मयूरशिखा) जटामासी—इनमें से कोई औषधि उपर्युक्त तिथि वार नक्षत्र में उखाड़ कर प्रयोग करने से शत्रुओं को पराजित करती है। लक्ष्मणा बूटी के प्रयोग से पुत्र उत्पन्न होता है। हस्तिशुण्डी के रस में लोहे का चूर्ण जल बन जाता है। पलाश, पारद, आमलक, तम्बाकू आदि के संयोग से ताम्र-स्वर्ण में बदल जाता है।

मन्त्र द्वारा सिद्धियां—

वैदिक और तांत्रिक मन्त्रों को विधिपूर्वक जप करने पर अणिमादिक सिद्धियां उदित हो जाती हैं। महात्मा तुलसीदास कहते हैं—

साधक नाम जपहिं लय लाये।
होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये॥

मन्त्रों की अद्भुत शक्ति से क्या नहीं हो सकता? हठयोग में जिन क्रियाओं को अभ्यास से सिद्ध किया जाता है वे मन्त्र जप से शीघ्र सम्पन्न हो जाती हैं। खेचरी भूचरी शाम्भवी आदि मुद्रायें मन्त्र बल से भी सिद्ध हो जाती हैं। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने अपने अनेकों बन्धों को ध्यान में भिन्न-भिन्न मन्त्रों का

उपदेश कर उन्हें अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान की हैं। किन्तु उसके प्रयोग का अधिकार प्रभुजी ने अपने आधीन रखा है।

तप द्वारा सिद्धियां—

'सत्यं हि परमं तपः', 'ब्रह्मचर्यं तपः', 'द्वन्द्व सहनं तपः', 'प्राणायामो परंतपः' आदि तप की अनेक परिभाषायें हैं। व्यास जी ने अपने भाष्य में तपका फल लिखा है—'तपसा संकल्प सिद्धिः।' अर्थात् तप से संकल्प सिद्धि होती है। 'तपसा चीयते ब्रह्म'—तप से ब्रह्म की अनुभूति होती है। तत्व वैशारदी नामक टीका में वाचस्पति मिश्र तप के प्रभाव के बारे में लिखते हैं कि तपस्वी जो कुछ देखने, सुनने और मनन करने की कामना करता है वहां पर उसी वस्तु को देख सुन और प्राप्त कर सकता है।

समाधि द्वारा सिद्धियां—

धारणा, ध्यान और समाधिरूप संयम के परिणामस्वरूप योगी में परकाय प्रवेश, चित्त-निर्माण, काया का समग्र ज्ञान, नक्षत्रादि लोकों का ज्ञान, अनेक प्रकार की सिद्धियाँ हो जाती हैं। जिनका विस्तार से वर्णन आगे किया जायेगा। श्रीमद्भागवत में एकादश स्कन्द के पन्द्रहवें अध्याय में भगवान कहते हैं-

जन्मौषधितपो मन्त्रैः
यावतीरिह सिद्धयः।
योगेनाप्नोति ताः सर्वाः
नान्यैः योगगतिंव्रजेत्॥
सर्वेषामपि सिद्धीनां
हेतुः पतिरहं प्रभुः॥

अर्थात् जन्म, औषधि, तप, मन्त्र आदि से जितनी सिद्धियाँ प्राप्त होती है, वे सभी योग के द्वारा मिल जाती है। परन्तु वे तब मिलेंगी जब मुझ में चित्त पूर्णतः एकाकार होकर योग की अन्तिम स्थिति में पहुँच जाय। समस्त सिद्धियों का स्वामी ईश्वर है।

सिद्धियों का प्रयोजन—

योगीन्द्र गोरक्षनाथ का मत है कि सिद्धियों का प्रयोजन साधक में अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ता पैदा करना है। सिद्धियों के द्वारा साधक के मन में यह विश्वास पैदा होता चलता है कि मैं ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ और आत्म-ख्याति की ओर मैं अपनी साधना के द्वारा एक दिन अवश्य पहुँच जाऊँगा। साधक अपनी आंशिक सफलता से साधना का लोभी हो जाता है। कहा भी है— 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।' जितने ही मार्ग में विघ्न आयें, वह इन सिद्धियों से प्रेरित होकर साधना नहीं छोड़ता। सिद्धियाँ मोक्षरूपी मार्ग में मील के पत्थर हैं, जिनके संकेत से साधक आगे बढ़ता चला जाता है। जैसे कोई पथिक काशी जाना चाहे तो उसे मार्ग में अनेकों मन्दिर और बाजार मिलेंगे। उसी

प्रकार साधना मार्ग में सिद्धियाँ आती हैं। योग का यह सिद्धान्त है कि— 'योगिनां योग एव उपाध्यायः।' अर्थात् योग साधना ही योगियों को आगे बढ़ाती चली जाती है। सिद्धियां मार्ग के दीपक स्तम्भों का काम करती हैं। जिस प्रकार स्वर्णकार कसौटी पर कसकर स्वर्ण के खरे-खोटे होने की जांच किया किया करते हैं उसी प्रकार सिद्धियों के द्वारा ही जीवन्मुक्त अथवा विभिन्न भूमिकाओं के साधकों का बोध होता है। योगीन्द्र गोरखनाथ तो यहाँ तक कहते हैं कि जिसमें सिद्धियाँ नहीं है उसे बद्ध मनुष्य समझना चाहिए—

सिद्धिभिः परिहीनं तु
नरं बद्धं हि लक्षयेत्।
(गो. बीजम् १८३)

भगवान पतञ्जलि देव ने सिद्धियों को निरोधावस्था में विघ्न स्वरूप माना है। व्युत्थान अवस्था में जब चित्त किसी एक लक्ष्य पर केन्द्रित होता रहता है उस स्थिति में ये सिद्धियाँ चमत्कार करने वाली हैं। योगसूत्र में स्पष्ट निर्देश है—

ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः।
(३/३७)

सबसे बड़ी सिद्धि आत्म-सिद्धि है जहाँ द्वैत प्रपञ्च का पूर्णतः बाध हो जाता है। वहाँ देखने, सुनने तथा जानने वाला रहता ही नहीं। द्वैत मिट जाता है, फिर कौन किसको जाने, किसको देखे? उस अवस्था में पहुँचकर नैष्कर्म्य सिद्धि हो जाती है। सारे कर्म निर्बीज भाव को प्राप्त हो जाते हैं। सर्वसमर्थ श्री सद्गुरु देव अपने प्रिय भक्तों को इसी आत्म-कल्याण के पथ पर युक्तिपूर्वक इस प्रकार ले चलते हैं कि सिद्धियों का तमाशा उनके मार्ग में विघ्न नहीं बनता। जिस प्रकार किसान बैल का मुँह मुसीके से बन्द कर उससे इच्छित मार्ग तय करा लेता है तथा तांगे वाला अपने घोड़े की आंखों पर आवरण डालकर उसकी दृष्टि को दांयी बांई ओर से हटाकर आगे की ओर देखने वाली बना देता है उसी प्रकार श्री सद्गुरुदेव सिद्धियों पर पर्दा डालकर साधक को आत्म-कल्याण के पथ पर सीधा ले चलते हैं। श्रीमद्भागवत में भगवान उद्धव जी को यही सिद्धान्त समझाते हैं कि—

अन्तरायान् वदन्त्येतान्
युञ्जतो योग मुत्तमम्।
मया सम्पद्यमानस्य
कालक्षपण हेतवः॥
(११/१५/३३)

अर्थात् भक्तियोग तथा राजयोग का अभ्यास करने वाले तथा ईश्वर के साथ ऐक्य भावना के लिए साधना करने वाले योगियों

के लिए सिद्धियाँ विघ्न ही हैं क्योंकि सिद्धियों के चक्कर में पड़कर वे अपना अभ्यास इन्हीं में पूर्णता प्राप्त करने के लिए करने लग जाते हैं। इस तरह लक्ष्य तक पहुँचने में उन्हें बहुत समय लग जाता है। सिद्धियों से उनके बहुमूल्य समय का दुरुपयोग ही होता है।

सिद्धियों का प्रादुर्भाव काल—

बिना साधना के योग सिद्ध नहीं होता। जब एक आलम्बन पर चित्त एकाग्र होने लगता है तो चित्त इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। जब तक चित्त सर्वार्थ है तब तक वह शक्तिहीन है। धारणा द्वारा एक लक्ष्य पर शक्ति इकट्ठी होने लगती है और चित्त एकाग्र हो जाता है। परमहंस रामकृष्ण इस अवस्था को सरसों की पोटली के उदाहरण से समझाया करते थे। मन रूपी सरसों जब तक बिखरी पड़ी है, वह किसी प्रयोजन की नहीं है। जब उसे इकट्ठा कर एक पोटली में समेट लेते हैं तब उससे तेल निकाला जा सकता है। इसी प्रकार पारा जब बद्ध हो जाता है तो उसके सेवन से मृत्यु के मुख में गया हुआ व्यक्ति भी लौट आता है तथा आकाशगमन, समुद्र सन्तरण आदि अलौकिक ढंग के कार्य उसके प्रयोगों से किये जा सकते हैं। अतः धारणा पुष्ट होने के बाद ध्यान तथा समाधि की परिपक्वता होती चली जाय तो उस स्थिति को संयम सिद्धि की अवस्था कहते हैं। भगवान पतञ्जलि ने 'त्रयमेकत्र संयमः' इस सूत्र द्वारा धारणा, ध्यान तथा समाधि की एकत्र स्थिति को 'संयम' नाम दिया है। संयम सिद्ध हो जाने पर उनके विभिन्न प्रकार के विनियोगों से नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्रादुर्भूत होने लगती हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन आगे किया जायगा।

योगीन्द्र गोरक्षनाथ लययोग, राजयोग, हठयोग, भक्तियोग तथा सिद्धियों की सिद्धि के लिए दृढ़ अभ्यास तथा तीव्रसंवेग की साधना के साथ-साथ श्री गुरुदेव की करुणा कृपा को आवश्यक मानते हैं। जब तक प्राणवायु पश्चिम गमन नहीं करती तब तक सारी क्रियायें दिखावा मात्र है। वे कहते हैं—

नाना विधाः क्रमाः काष्ठाः
सहजा वा लयादिकाः।
न तु तन्मोक्षमार्गं स्यात्
प्रसिद्धं परिचर्य विना॥
यो. बीजम् १६२

तथा—

पश्चिम द्वार मार्गेण,
जायते त्वरितं फलम्।
—वही. १५९

पश्चिम मार्ग में प्रवेश किये बिना धारणा ध्यान, समाधि रूप संयम सिद्धि नहीं होती।

पश्चिम मार्ग में जब प्राण चलने लगते हैं तभी समाधि होती है। यह कार्य साधना योग से वज्रासन, पश्चिमोत्तान, शीर्षासन, भुजङ्गासन तथा मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध एवं जालंधर बन्ध तथा शाम्भवी, मातंगी, खेचरी आदि मुद्राओं के दीर्घकाल तक अभ्यास करने से होने लगता है। सिद्धयोग में श्री सद्गुरु देव की कृपा से भस्त्रा प्राणायाम के बाद कुम्भक सिद्धि होने पर स्वतः होने लगता है। विवेकी साधक को ऐसी कृपा प्राप्त हो जाय तो अपने को भाग्यशाली समझकर श्री गुरुदेव के चरण-कमलों में अपने को न्यौछावर कर दे फिर कुछ भी असम्भव नहीं है। सिद्ध गुरुदेव सीधे प्राणों पर प्रहार करते हैं जिससे चित्त अपने आप प्राणों के पीछे-पीछे चलने लगता है और शीघ्र समाहित हो जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में वात, पित्त, कफ इन त्रिदोषों में 'वात दोष' को ही प्रधान माना है। विचक्षण वैद्य वायु दोष के बलाबल का विचार कर उसके आधार पर यदि चिकित्सा करता है तो वह त्रिदोषों की सफलता से चिकित्सा कर सकता है। सुश्रुत में कहा गया है—

पित्तं पंगुः कफः पंगुः
पंगवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयते
तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

अर्थात् शरीर के रस, रक्त, माँस, मज्जा, अस्थि, वीर्य, ओज आदि धातुयें तथा सभी प्रकार के मल स्वयं क्रिया करने में असमर्थ हैं। धनञ्जय नामक दश वायु शरीर में कफ, पित्त, मल तथा धातुओं को क्रियाशील बनाया करते हैं जैसे वायु मेघों को जहाँ चाहती है वहाँ ले जाती है। किन्तु ये वायु पूर्ववाही रहती हैं। योगाभ्यास से ही यह पश्चिम बहन करने वाली बनती है। तभी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति बना करती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर उपनिषदों में प्राणायाम को मनोनिग्रह के लिए आवश्यक साधन माना गया है। देखिये—

चले वाते चलं चित्तं
निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति,
ततो वायुं निरोधयेत् ॥
—उपनिषद्

अर्थात् प्राण के गतिशील रहने पर चित्त चञ्चल रहता है। उसके निश्चल होने पर मन भी निश्चल हो जाता है और निश्चल चित्त के द्वारा योगी शुष्क वृक्ष की तरह निश्चेष्ट व विकार रहित बन जाता है अतः योग में सफलता प्राप्त करने के लिए प्राण निरोध का अभ्यास करना चाहिये।

योगयोगेश्वर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र

उद्धव को सिद्धियों का सिद्धान्त समझाते हुए इसी प्रकार के उपायों का उल्लेख करते हैं—

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य
जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत
उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥
—श्रीमद्भागवत् ११/१५/१

अर्थात् जब साधक इन्द्रिय, प्राण तथा चित्त को यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार, धारणा द्वारा वश में कर लेता है और ध्यान-योग द्वारा अपना चित्त ईश्वरार्पण कर देता है तो उसके समक्ष सिद्धियां उपस्थित होने लगती हैं।' भगवान् प्रकारांतर से पुनः इसी सिद्धान्त का दृढ़ता से प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य
जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतः का
सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥
—वही ३१

अर्थात् जो इन्द्रियजयी, मनोजयी तथा प्राणजयी है तथा संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण के स्मिताननन को अपनी धारणा का लक्ष्य बना चुका है, उसके लिए कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है। मन्त्र जप तथा ध्यान-योगपरायण योगी में भी सभी सिद्धियां आ जाती हैं। इसका कारण यह है कि साधक जिस प्रकार की धारणा करता है, उसके साथ एकरूपता होने के कारण, लक्ष्य के गुणधर्म उपासक में प्रकट होने लगते हैं। जैसे अग्नि का तृणों से संयोग होने पर तृणों में अग्नि के सभी गुणधर्म दाहकता, प्रकाश तथा ऊष्मा स्वतः आ जाते हैं।

ध्यानयोग का अभ्यास करने से प्रथम रोग नष्ट हैं उसके बाद शरीर में चेतन आत्मा का आभास होने लगता है। श्री गुरुदेव की कृपा से अनेकों प्रकार से बन्ध व मुद्रायें स्वतः प्रकट होने लगती हैं तथा प्राणापान की एकता होती है जिससे सोमरस का पानकर वायु तथा अग्नि के प्रचण्ड वेग से कुण्डलिनी शक्ति सभी दोषों का भक्षण कर जाती है। शरीर में अभूतपूर्व कोमलता तथा वर्ण में अपूर्व निखार आ जाता है और अनेक प्रकार के नाद सुनाई पड़ने लगते हैं। पृथ्वी जल आदि तत्वों पर अधिकार होने से योगी आकाशगमन करने की सामर्थ्य प्राप्तकर लेता है। उस अवस्था में उसे खेचरी सिद्धि हो जाती है। उसमें सर्वज्ञता, इच्छानुसार शरीर बनाना, पवन गति के समान गतिवान होना आदि नाना प्रकार की सिद्धियां हो जाती हैं। जिस प्रकार हनुमान में ये सिद्धियाँ दिखाई पड़ती हैं। इच्छानुसार रूप धारण करने की सिद्धि देखिये—

निप्रकम्प धरि कपि तहँ गयऊ ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥
तथा मसक समान रूप कपि धरी ।
लंकहि प्रविसि सुमिरि नरहरी ॥
जस-जस सुरसा बदन बढ़ावा ।
तासु द्विगुण कपि रूप दिखावा ॥

सिद्धियों के प्रकार—

न केवल योग शास्त्र में अपितु आयुर्वेद शास्त्र में भी सिद्धियों को स्वीकार किया गया है। चरक संहिता में योग सिद्धि प्राप्त होने की दशा में आठ प्रकार की विशेष शक्तियों का वर्णन मिलता है जो योग सिद्धि की सूचना देने वाले माने गये हैं—

आवेशश्चेतसो ज्ञान-
मर्थानां छन्दतः क्रिया ।
दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः
कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥
इत्यष्टविधमाख्यातं
योगिनां बलमैश्वरम् ।
शुद्ध सत्वसमाधानात्
तत्सर्वमुपजायते ॥

—चरक सं. शरीरस्थान/१४०/१४१

अर्थात् योगसिद्धि होने पर शरीर में ध्येय की शक्ति का आवेश चित्त में ज्ञान का उदय, इन्द्रियार्थों को स्वेच्छापूर्वक प्रवृत्त करने की सामर्थ्य, दिव्य-दृष्टि, दिव्य श्रोत, अपूर्व स्मृति शरीर की कान्ति, अरिष्टों का अभाव आदि लक्षण सतोगुण की वृद्धि होने पर योगियों में होने लगते हैं जिनसे योगी का ऐश्वर्य प्रकट होता है।

योगिराज श्री गोरक्षनाथ के मतानुसार संसार में दो प्रकार की सिद्धियां मानी जाती हैं—कायाकल्प तथा अकल्पित।

रसौषधिक्रियाकाल मन्त्र
क्षेत्रादि साधनात् ।
सिद्धयन्ति सिद्धयो यास्तु
कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः ॥
अनित्या अल्पवीर्यास्ताः
सिद्धयः साधनोद्भवाः ।
साधनेन विनाप्येवं
जायन्ते स्वत एव हि ॥
स्वात्म योगैकनिष्ठे तु
स्वातन्त्र्यादीश्वरस्ततः ।
प्रभूताः सिद्धयो यास्ता
कल्पनारहिताः स्मृताः ॥
सिद्धाः नित्याः महावीर्याः
इच्छारूपाश्च योगजाः ।
चिरकालात्प्रजायन्ते
वासनारहितेषु च ॥
ताः शुभाः या महा-
योगात्परमात्मपदेऽव्यये ।

बिना कार्यं सदा दीप्ता

योगसिद्धस्य लक्षणम् ।।

—यो. बीजम् १७८

अर्थात् पारे के कारण बन्धन आदि के संयोग तथा दिव्य रसायनों के प्रयोग वशीकरण, उच्चाटन आदि क्रियाओं से पुष्य नक्षत्रयुक्त रवि आदि में कालबल से विभिन्न मन्त्रों से तथा तीर्थ, यन्त्रादि के साधन से जो सिद्धियाँ होती हैं वे कल्पित सिद्धियाँ होती है। वे सिद्धियाँ साधनों से प्रसूत होने के कारण थोड़े समय प्रभाव रखने वाली तथा अल्पवीर्या होती है। दूसरे प्रकार की सिद्धियाँ अकल्पित होती हैं। बिना साधन के अपने आत्मयोग में परिनिष्ठित योगियों में स्वयमेव जिन सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है वे अकल्पित कही जाती हैं। उनसे योगी से ऐश्वर्य तथा स्वाधीनता आती है तथा लोक लोकान्तरों में गमन करने, निर्माण काय, निर्माण चित्त तथा दूर श्रवण, दूरदर्शन आदि की सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं। जब योगी पूर्णतया वासनारहित हो जाता है उसकी अपनी कोई चाह नहीं रहती, उस अवस्था में पर्याप्त समय में स्वतः प्रकट होती हैं। अकल्पित सिद्धियाँ नित्य सिद्ध तथा महावीर्या, इच्छा रूप, शुभ तथा परमात्मा में बिना कार्य के ही सदा दीप्त रहने वाली हैं। परमात्मा में चित्त, बुद्धि एवं अहङ्कार का लय कर देने में साधक में परमात्मा की कृपा से वे ही सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने योग-सिद्धान्त में सिद्धियों का विभाजन तीन प्रकार से किया है—

प्रथम— (१) बहिरंग साधनों से उद्भूत। (२) अन्तरंग साधनों से प्रसूत।

द्वितीय—(१) ग्राह्य विषयक (२) ग्रहणविषक (३) ग्रहीतृ विषयक।

तृतीय—(१) क्रियाप्रधान (२) ज्ञानप्रधान।

बहिरङ्ग साधनों से प्रादुर्भूत सिद्धियाँ निम्न प्रकार हैं। बहिरंग साधन यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार हैं। उनसे क्रमशः निम्न सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं—

(१) यम—पांच यम हैं—१. अहिंसा से सभी प्राणी योगी के पास वैर त्याग देते हैं। यथा तुलसी वर्णन करते हैं—

मुनिजन निकट विहग मृग जाहीं।
बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ।।

(२) सत्य—सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। २/३६। सत्यवादी में वचन सिद्धि हो जाती है। उसका भविष्य कथन यथार्थ घटता है।

(३) अस्तेय—अस्तेय प्रतिष्ठा से सभी रत्नों की उपस्थिति स्वयमेव होने लगती है।

(४) ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य की साधना से योगी शक्तिपात करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है तथा तार, सुतार आदि सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।

(५) अपरिग्रह—अपरिग्रह की परिपक्वता होने पर साधक को अपने जन्म संस्कारों तथा जन्म के कारणों का ज्ञान स्वतः हो जाता है।

(२) नियमों- की साधना से होने वाली सिद्धियां पांच हैं—

(१) शौच की निष्ठा परिपक्व होने पर चित्त तथा शरीर शुद्धि होती है। जिससे चित्त की एकाग्रता, इन्द्रिय जय की सामर्थ्य हो जाती है।

(२) सन्तोष से- परमानन्द मग्नता रहती है।

(३) तप से- अणिमादि सिद्धियां प्रकट होती हैं।

(४) स्वाध्याय से- देव, ऋषि, सिद्धगण तथा महानात्माओं से साक्षात्कार वार्तालाप होता है।

(५) ईश्वर प्रणिधान नामक पांचवे नियम की साधना से विघ्न दूर होते हैं तथा समाधि लाभ होता है।

(३) आसनों से- तीन घण्टे तक नित्य अभ्यास करने पर आसन छः माह में सिद्ध हो जाता है जिससे साधक अन्तर्जगत में प्रवेश कर सकता है तथा समाधि का आनन्द प्राप्त कर सकता है।

(४) प्राणायाम- के अभ्यास से आवरण क्षीण हो जाता है तथा दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, वशीकरण, त्राटक, आदि सिद्धियां हो जाती हैं।

(५) प्रत्याहार- की साधना से इन्द्रिय जय, तथा मनोजय तथा प्राणजय की सिद्धि होती है।

अन्तरंग साधना से सिद्धियां—

महर्षि पतञ्जलि ने 'त्रयमन्तरंगम् पूर्वेभ्यः' (योगसूत्र ३/७) इस सूत्र में धारणा, ध्यान और समाधि को निर्बीज समाधि की अपेक्षा बहिरंग किन्तु पूर्व वर्णित यम नियमादि साधनों की अपेक्षा अन्तरंग साधन माना है। इनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियां असंख्य हैं तथा बहिरंग साधनों से उपलब्ध होने वाली सिद्धियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। इन शक्तियों का आधार 'संयम' है। इनका विस्तार से वर्णन पातञ्जल योग सूत्रों के विभूति पाद में द्रष्टव्य है। यहां संक्षेप में केवल रूपरेखा मात्र प्रस्तुत किया जा रहा है। त्रिकालज्ञता नामक सिद्धि वस्तुओं के धर्म-लक्षण एवं अवस्था नामक तीन परिणामों पर संयम करने से होती है। इसी प्रकार शब्दार्थ प्रत्यय के प्रविभाग पर संयम करने से योगी प्राणिमात्र की बोलियों को समझ लेता है। संस्कारों पर संयम करने से अतीत जन्मों का ज्ञान हो जाता है।

इसी प्रकार संयम के बलसे योगी में पांच क्षुद्र सिद्धियां उदित होती हैं—त्रिकालज्ञता, द्वन्द्वों में समभाव, परचित्त ज्ञान, अग्नि, सूर्य, जल तथा विष आदि का स्तम्भन तथा सर्वत्र जय प्राप्त करना।

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं
परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां
स्तम्भनत्वाप्यपराजयः ॥

इसके अतिरिक्त पूर्वज्ञान, दूरश्रवण दूरदर्शन, निर्विकार स्थिति, मनोजवित्व, इच्छानुरूप रूप निर्माण, परकाय प्रवेश, स्वेच्छामृत्यु, देवताओं के साथ रमण करना, संकल्पसिद्धि, आज्ञासिद्धि तथा सर्वत्र बे रोक-टोक जाने की सिद्धि—ये दस सिद्धियां गुण प्रधान सिद्धियां मानी जाती हैं।

अस्मिन् देहेऽनूर्मिमत्वं
दूरश्रवण दर्शनम् ।
मनोजवित्वं कामरूपं
परकायप्रवेशः स्वेच्छामृत्युः ॥
देवक्रीडाऽनुदर्शनम्
यथा संकल्पसिद्धिः ।
आज्ञा सिद्धिः
अव्याहत गतिः ॥
—श्रीमद्भागवत ११/१५

सूर्य का संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है। तथा चन्द्रमा का संयम करने पर योगी समस्त तारागण समूहों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। नाभिचक्र में ध्यान करने से शरीर रचना का समस्त ज्ञान हो जाता है। कूर्मनाड़ी में संयम करने पर चित्त एकाग्र हो जाता है। मूर्धाज्योतिष में संयम करने पर आकाश तथा भूमण्डल के मध्य विचरने वाले सिद्धों का दर्शन होता है। हृदय में संयम करने से चित्त का साक्षात्कार होता है। भूतों की स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय एवं अर्थवत्व—इन पांचों अवस्थाओं में संयम कर लेने पर योगी भूतजयी हो जाता है। भूतजयता के तीन फल हैं—१. अष्ट सिद्धियां २. काय सम्पत् ३. तद्धर्मानभिघात।

अष्ट सिद्धियां—

अणिमा, महिमा चैव
लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु
शक्तिप्रेरणमीशिता ।
गुणेष्वसङ्गो वशिता
यत्कामस्तदवस्यति ॥
—श्रीमद्भागवत ११/१५/४-५

कायसंपत सिद्धि में योगी का शरीर लावण्ययुक्त तथा वज्र के समान हो जाता है।

पञ्चमहाभूतों के आवरक, क्लेदक, दाहक, शोषक तथा आवरक धर्मों का प्रभाव योगी पर नहीं पड़ता। योगी को जल गला नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती तथा वायु सुखा नहीं सकती है।

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जिज्ञासु उद्धव को सिद्धियों का लक्षण और स्वरूप समझाते हुए उनकी संख्या अठारह बतलाते हैं। देखिये—

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता
धारणायोगपारगैः।
तासामष्टौ मत्प्रधाना
दशैव गुणहेतवः॥
—११/१५/३

अर्थात् सिद्धियाँ अठारह प्रकार की होती हैं जिनमें से आठ अणिमादि सिद्धियाँ तो प्रधान रूप से भगवान में ही रहती हैं, दूसरे योगियों में कुछ-कुछ रहती हैं। दस सिद्धियाँ सतोगुण के बढ़ने पर योगियों को प्राप्त हो जाती हैं। शरीर की तीन सिद्धियां—अणिमा महिमा और लघिमा। इन्द्रियों की एक सिद्धि होती है—प्राप्ति। प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, कामावसायित्व ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त होती हैं। अन्य प्रकार की दस सिद्धियों का वर्णन ऊपर कर आये हैं वे हैं—द्वन्द्व सहन, दूरदर्शन, दूरश्रवण, मनोजव, कामरूपता, परकाय प्रवेश, स्वेच्छा मृत्यु, देवताओं के साथ क्रीड़ा दर्शन, संकल्प सिद्धि, आज्ञापालन, त्रिकालज्ञता, परचित्त ज्ञान, सूर्य अग्नि, जल, विष आदि की शक्तियों को स्तम्भित कर देना तथा अपराजित रहना—ये सिद्धियाँ भी योगियों को प्राप्त होती हैं। किस प्रकार की धारणा से किस प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है इसका निर्देश नीचे किया जाता है—

अणिमा—पत्थर को बेधकर भी उसमें से पार निकलने की शक्ति अणिमा सिद्धि से प्राप्त होती है। उसकी साधना का उपाय योगेश्वर श्रीकृष्ण बताते हैं—

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि
तन्मात्रं धारयेन्मनः।
अणिमानमवाप्नोति
तन्मात्रोपासको मम॥
—वही ११/१५/१०

हे उद्धव! मैं ही पञ्चभूतात्मक सूक्ष्म तन्मात्राओं के रूप में हूँ। जो साधक इन सूक्ष्मतन्मात्राओं में संयम करता है तथा सर्वात्मना मेरी उपासना करता है उसे अणिमा सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

महिमा—महत्तत्व के रूप में प्रकाशित मेरे रूप का संयम करने वाला महिमा सिद्धि प्राप्त करता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश में पृथक्-पृथक् संयम सिद्ध हो

आने पर तदाकार धारण करने की महिमा सिद्धि प्राप्त होती है।

अणिमा—जो साधक वायु आदि चार भूतों के परमाणुओं को ईश्वर का ही रूप समझकर उसमें संयम करता है उसे अणुरूप धारण करने की सिद्धि प्राप्त होती है। सात्विक अहङ्कार को ईश्वर का रूप समझकर संयम सिद्ध करने से समस्त इन्द्रियों को वश प्राप्त कर प्राप्ति नामक सिद्धि प्राप्त करता है। महत्तत्व में संयम करने से प्राकाम्य सिद्धि द्वारा इच्छानुसार सभी भोग प्राप्त होते हैं। जो त्रिगुणमयी माया के ईश्वर काल स्वरूप विश्वरूप का संयम करता है वह शरीरों तथा जीवों को अपनी इच्छानुसार प्रेरित करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। इसे ईशत्व सिद्धि कहते हैं। जो चतुर्थ शरीर नारायण में संयम करता है उसे 'वशित्व' सिद्धि प्राप्त होती है। जिससे वह ईश्वर के समान सबको वश में करने वाला बन जाता है। निर्गुण ब्रह्म में अपना निर्मल मन लगा देता है उसे परमानंद स्वरूपिणी 'कामवसायिता' सिद्धि प्राप्त होती है जिससे सभी कामनायें पूर्णतृप्त हो जाती हैं।

जो श्वेत द्वीप के स्वामी मेरे शुद्ध स्वरूप का ध्यान करता है उसकी छः ऊर्मियां—भूख-प्यास, जन्म मृत्यु और शोक-मोह नष्ट हो जाती हैं और उसे शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होती है। समष्टि प्राणरूप आकाशात्मा में अनाहद नाद का संयम करने से दूर-श्रवण सिद्धि प्राप्त होती है जिससे आकाश में उपलब्ध—विविध प्राणियों की बोली सुन सकता है। सूर्य (त्वष्टा) में संयम करने से दूरदर्शन प्राप्त होता है जिससे सारे संसार को देख सकता है।

मन को प्रभु में संयमित कर प्राणवायु और शरीर को भी ईश्वर में संयुक्त कर देने से मनोजव सिद्धि होती है जिससे योगी जहाँ चाहे शरीर सहित पहुँच जाता है। जब योगी मन को उपादान बनाकर संकल्प शक्ति से किसी देवता आदि के रूप में संयम करता है तो मनोनुकूल देवता का रूप धारण कर सकता है क्योंकि ईश्वर के बल और आश्रय से मन संयुक्त होने से उन्हीं की शक्तियों को आत्मसात् कर तद्रूप बन जाता है।

परकाय-प्रवेश सिद्धि—

परकायं विशन् सिद्ध
आत्मानं तत्र भावयेत्।
पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो
वायुभूतः षडङ्घ्रिवत्॥
—वही /२३

यदि परकाया में प्रवेश की इच्छा हो तो योगी को संकल्प से ऐसी धारणा करनी चाहिए कि मैं अभिलषित अमुक शरीर में प्रविष्ट हूँ। ऐसा करने से उसका प्राण वायु-

रूप होकर उसी प्रकार एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है जिस प्रकार भौंरा एक फूल को छोड़कर दूसरे फूल पर चला जाता है।

इच्छामृत्यु-सिद्धि —

पाण्यांऽऽपीड्य गुदं
प्राणं हृदुरः कण्ठमूर्धसु।
आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म
नीत्वा उत्सृजेत्तनुम् ॥

शुभ मुहूर्त में यदि शरीर छोड़ने की इच्छा हो तो ऐड़ी से गुदाद्वार को दबाकर सिद्धासन में बैठकर प्राणवायु को क्रमशः हृदय वक्षस्थल, कण्ठ तथा मस्तक में ले जाय, फिर ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर उसे ब्रह्म में लीन करके शरीर त्याग कर दे।

देवताओं की क्रीड़ाओं का दर्शन करने की इच्छा हो तो ईश्वर के शुद्ध सत्वमय स्वरूप में संयम करे सतोगुण की अंशरूपा सुरसुन्दरियाँ विमानों पर चढ़कर योगी के पास पहुँच जायेंगी।

संकल्प सिद्धि—

यथा संकल्पयेद् बुद्धया
यदा वा मत्परः पुमान्।
मयि सत्ये मनोयुञ्ज-
स्तथा तत् समुपश्नुते॥
—वही /२६

जिसका चित्त निरन्तर ईश्वर में लगा रहता है वह जैसा संकल्प करता है उसका सत्य संकल्प पूरा हो जाता है।

ईश्वर 'ईशित्व' और 'वशित्व' सिद्धियों के स्वामी हैं अतः जो ईश्वर में ध्यानयोग-परायण रहता है उनकी भी आज्ञा को कोई टाल नहीं सकता। ईश्वर की धारणा करते-करते जिसका चित्त सब दोषों से शुद्ध हो गया है उसको जन्म तथा मृत्यु का ज्ञान हो जाता है तथा वह भूत भविष्यत् एवं वर्तमान को जान लेता है। जिस प्रकार जल के द्वारा जल में रहने वाले प्राणियों का नाश नहीं होता उसी प्रकार जिस योगी का चित्त ईश्वर में लीन होकर वहीं विश्राम करने लगा है उसे अग्नि, जल, विष नष्ट नहीं कर सकते क्योंकि उसका शरीर योगमय शरीर बन चुका है। जो योगी श्रीवत्स, दिव्यास्त्र (चक्र) आदि चिह्नों से विभूषित व ध्वजा, छत्र, चंवर आदि से शोभित ईश्वर के विग्रहों तथा विभूतियों का ध्यान करता है वह अजेय हो जाता है।

जिस प्रकार बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए मिठाई खिलाकर उसे अध्ययन में प्रवृत्त करते हैं उसी प्रकार योगमार्ग में सिद्धियाँ हैं। ये दिशा-सूचक यन्त्र की सुई की तरह काम करती हैं जो आनुषंगिक रूप से योगी को प्राप्त होती हैं। जिनमें परवैराग्य की परा-

काष्ठा हो जाती है वह ईश्वर को ही देखता है, उसके ऐश्वर्य में नहीं भटकता। परमार्थ दृष्टि से सिद्धियां बुद्धि सत्व का क्षोभ हैं। ज्यों-ज्यों सिद्धियों का स्वाद मिलता जाता है लोकैषणा जीव को संसार में लाकर पर पटकती है फिर वही कोल्हू का सा बैल बन जाता है। अतः योगी को सावधान किया गया है कि सिद्धियों के प्रकट होने पर योगी न तो उनको पाने का लोभ करे और न उनको छोड़ने का अभिमान करे बल्कि शक्तिमान् में शक्ति को विलीन कर दे। केवल परम सत्ता की अभिलाषा करे। आत्म सिद्धि को ही महा सिद्धि समझकर सिद्धियों को नमस्कार कर ले। योगसूत्र में चेतावनी दी है—

स्थान्युपनिमंत्रणे सङ्ग स्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसंगात्। ३/५१

वमन किये हुए पदार्थों की तरह सिद्धियों के रूप में प्राप्त भोगों के उपस्थित होने पर योगी को देवताओं की प्रार्थना को स्वीकार नहीं करना चाहिए और न देवताओं का पूज्य मान कर अपनी योगसिद्धि का अहंकार ही करना चाहिए क्योंकि अहंकार या भोगों में आसक्ति होने से पुनः जन्म मरण की संसार रूपी अग्नि में जलना पड़ेगा। अतः विवेक ज्ञान से योगी को सिद्धियों का मार्ग उसी तरह लांघ जाना चाहिये जिस तरह हनुमान जी समुद्र को लांघ गये थे।

पूर्णता प्राप्त सिद्ध पुरुष अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं करते। 'अधजल गगरी छलकत जाय' वाली कहावत यथार्थ है। जिस पर भैरव, देवी, बटुक भैरव आदि की साधना से कुछ सिद्धियां आ जाती हैं वे उन्हें उठाये फिरते हैं। रामकृष्ण परमहंस के जीवन में सिद्धियों का एक दो स्थल पर ही दर्शन मिलता है उनके शिष्यों ने जल पर पैदल चलने की किसी योगी की सिद्धि का उनके सामने जिक्र किया। उसे सुनते ही रामकृष्ण परमहंस जी कहने लगे कि उस योगी की सिद्धि की कीमत केवल एक आना है। उसने कितने वर्ष लगाकर कितनी कठोर साधना करके पानी पर चलने की जिस सिद्धि को प्राप्त कर पाया है उस पानी को एक आना देकर नाव से आसानी से पार किया जा सकता है। इसके लिए इतनी कठोर साधना को व्यर्थ करना कहाँ की बुद्धिमानी है।

एक बार रामकृष्ण परमहंस के मन में इच्छा हुई कि उन्हें भी साधना से उत्पन्न होने वाली सिद्धियों का प्रदर्श हो तथा वे उनसे काम लें। इसी कामना से वे 'माँ' (काली) के समक्ष प्रार्थना करने लगे। तभी माँ ने उनसे कहा तू सिद्धियां लेकर क्या करेगा? ये

❊ पत्रम-पुष्पम-फलम-तोयम् ❊

(भगवान मनु के आदेश)

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥

(दुष्कर्मों की शुद्धि के लिए) प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिए। जिन्होंने अपने पापों का प्रायश्चित्त नहीं किया वे निन्दित लक्षणों वाले (गूंगे बहरे आदि) उत्पन्न होते हैं।

× × × ×

ब्रह्म हत्या सुरापनं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥

ब्रह्म हत्या शराब पीना चोरी और गुरु पत्नी पर कुदृष्टि रखना, राजा के सामने चुगली करना, गुरु झूंठी बातें बनाना, ब्रह्म हत्या के समान है।

× × × ×

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौट साक्ष्यं सुहृद्वधः ।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापान समानिषट् ॥

वेद विमुख होना, वेद की निन्दा करना, झूंठी गवाही देना, मित्र को मार डालना अभक्ष्य खाना और सुरापान, यह सब छः बराबर के पाप हैं।

× × × ×

गोवधोऽयाज्य संयाज्यपारदार्यात्मविक्रिया ।
गुरु मातृपितृ त्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥

गो हत्या, दुष्टों से यज्ञ कराना, पर-स्त्री गमन, आत्मा का बेचना, गुरु, माता, पिता, स्वाध्याय होम, पुत्र इनका त्याग यह सब पाप हैं।

+ + + +

इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥

मनोराज्य के संसार की भांति नश्वर तथा मिथ्यात्मक है तथा संसार के चक्र में घुमाने वाली हैं। जब पुनः उन्होंने 'माँ' के समक्ष हठ की तो माँ ने सिद्धियों का रूप एक दृश्य के रूप में प्रतीक ढंग से दिखाया। उन्होंने देखा कि एक बुढ़िया बैठी हुई शौच कर रही है। उसे देखकर रामकृष्ण परमहंस को लज्जा और घृणा हुई। 'माँ' ने कहा यही तो सिद्धियों का रूप है।

सच है, यदि ईश्वर ने हमें आकाश में उड़ने के लिए बनाया होता तो पक्षी का शरीर दे देता। यदि जल के अन्दर बैठने के लिए बनाया होता तो मछली बना देता, यदि भूमि के अन्दर छिपने के लिए हमें बनाया होता तो सर्प, भेड़िया आदि बनाकर रख जाता। इसी तरह स्थिर होकर जड़वत् गड़े रहने के लिए ही हमारा जीवन होता तो वह हमें वृक्ष तथा पर्वत बना देता। उसने हमें मनुष्य का शरीर दिया। पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन बुद्धि, चित्त और अहङ्कार देकर इस संसार में भेज दिया है उसका कोई गहरा दूसरा प्रयोजन है। और वह है—युग युगों से बिछुड़े अपने आत्म-स्वरूप सच्चिदानन्द, अखण्ड, अद्वन्द्व, साक्षात् अपरोक्ष प्रियतम से मिलना। एकाकार होना! युग युगों की प्यास बुझाना और कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग द्वारा समस्त चराचर जगत को उसी परम पिता का स्वरूप समझकर उसकी सेवा करना— 'वासुदेवः सर्वमिति' सियाराममय सब जग जानी। करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी॥ की भावना को अपने अन्तःकरण में भरना। तथा उठत, बैठत, जागत, सोवत उसी की छवि देखना और उसी का दीवाना बन जाना। जो कुछ उसके दर्शन की भिक्षा मिल जाय उसे गा-गाकर दूसरों को सुनाना, जो कुछ पास है उसे दीन दुःखियों की सेवा में लगाकर फिर उसके आगे हाथ फैलाकर खड़े होना उसी की याद में जीना और उसी के गम में मरना: यही हो जिन्दगी का मेरी सूलक और तराना। तेरी दुनिया और तेरी जादूगरी, तेरी त्रिगुणमयी माया को मैं अनगिनत जन्मों से देखता आया हूँ। अब बहुत हो गया। परदा हटाकर बे पर्दा हो जा। तुझे देखे बिना दिल को बेचैनी सिद्धियों से शान्त नहीं होगी। बिन दूल्हे की बारात की क्या शोभा। हे बांके बिहारी तू आँख मिचौनी छोड़कर आजा। जैसे मनु शतरूपा ने तुम्हें ही मांगा था वैसे ही मैं भी तुम्हें ही चाहता हूँ।

ईंधन के लिए हरे वृक्ष का काटना, स्वार्थ वश कोई काम करना, निन्दित अन्न को खाना पाप है।

× × × ×

अकामयतः कृतं पापं वेदाभ्यासे न शुद्धयति ।
काम तस्तु कृतं मोहान्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥

बिना इच्छा के किया हुआ पाप वेदाभ्यास से छूट जाता है। परन्तु जो मोहवश जान-बूझ कर किया जाय उसके लिए अलग-अलग प्रायश्चित्त बताये हैं।

× × × ×

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

विहित कर्म न करने और निन्दित कर्म के करने से तथा इन्द्रियों में आसक्त होने से मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है।

× × × ×

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ।
तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥

ब्राह्मण के लिए अपना सामर्थ्य राजा के सामर्थ्य से अधिक है इसलिए उनको चाहिए कि शत्रुओं को अपनी ही सामर्थ्य यानी सदुपदेश से ठीक करे।

× × × ×

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥

भृत्य अर्थात् स्त्री, पुत्र, आदि परिवार को कष्ट देकर जो परलोक के लिए दान करता है वह न इस जीवन में सुख का भागी होता है न परलोक में।

× × × ×

प्रविश्य सर्व भूतानि यथा चरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥

जिस प्रकार वायु समस्त प्राणियों में प्रविष्ट होकर विचरता है उसी प्रकार राजा, गुप्तचरों के द्वारा सर्वत्र प्रवेश करे। यही उसका मारुत व्रत है।

[शेष पृष्ठ ८ से आगे]

समय उज्जैन के राजा काशी आये। अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ नौका विहार करते हुये मणिकर्णिका घाट आ रहे थे कुछ दूर आने के पश्चात् उन्होंने तैलंग स्वामी को जल के ऊपर बैठे देखा। उसके पश्चात् राजा ने मन ही मन प्रार्थना की कि यदि ये स्वामी जी हमारी नाव में आकर बैठ जाय तो हमारा भाग्य खुल जाय। राजा के आन्तरिक विचारों को समझकर स्वामी जी स्वयं ही राजा के पारिवारिक सदस्यों के बीच में नाव में आकर बैठ गये। राजा इससे बहुत आश्चर्यचकित हुये। राजा के हाथ में, अंग्रेज सरकार द्वारा प्रदत्त एक तलवार थी, जिसे अंग्रेज सरकार ने उन्हें किसी वीरता के लिये प्रदान किया था। उज्जैन नरेश को उस तलवार पर बड़ा ही नाज था। स्वामी जी ने राजा के हाथ में सुशोभित तलवार देखने की इच्छा व्यक्त की। राजा ने भी अपना अहोभाग्य समझा और स्वामी जी के हाथ में वह तलवार दे दी। स्वामी जी ने तलवार को अच्छी प्रकार देखने के पश्चात गंगाजी के मध्य धार में फेंक दिया। इससे राजा को अत्यन्त क्रोध एवं क्षोभ हुआ। उसने स्वामी जी को बहुत अपशब्द कहे, नाव किनारे आने पर स्वामी जी ने राजा के क्रोध, क्षोभ एवं खिन्नता भरे चेहरे को देखकर गंगा जी में हाथ डालकर एक ही समान दो तलवारें निकाल कर राजा के हाथ में दे दी और कहा जो तेरी हो, ले लो।" राजा दोनों तलवारों में भेद न कर सके। स्वामी जी ने कहा कि जब तुम अपना सामान नहीं पहचान सकते तो वह सामान तुम्हारा कैसे ? फिर स्वामी जी ने एक तलवार राजा को दे दी और दूसरी गंगा जी में फेंक दी।

उपरोक्त घटनाओं के व्यापक प्रचार होने से लोग उन्हें अपने मनोरथों के लिए परेशान करने लगे। इसलिए स्वामी जी ने मौन धारण कर लिया। आवश्यकतानुसार वे बहुत कम बोला करते थे। वे कहा करते थे कि मनुष्य इस संसार के अनित्य सुख मात्र में डूबा रहता है। वह अपनी मानसिक शान्ति की तरफ ध्यान नहीं देता। मनुष्य अपने सांसारिक कार्यों के लिए जितना परिश्रम करता है उतना यदि ईश्वर की खोज में करे तो कोई भी वस्तु या कार्य उसके लिये असाध्य न रहे। उनका कहना था कि मन के स्थूल भाव से ईश्वर का स्थूल भाव, मन के सूक्ष्म भाव से ईश्वर का सूक्ष्म भाव, तथा मन के विलय से ईश्वर का स्वरूप उपलब्ध होता है। इस प्रकार काशी वासी एवं दर्शन करने आने वाले जिज्ञासु जनों को ज्ञान प्रदान करते हुए इस महा योगिराज ने काशी में ही अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। ✿

❀ श्री सद्गुरुदेव जी के योग-प्रचार कार्यक्रम ❀

दिनांक १३-१२-८१ को कलकत्ते के लिए प्रस्थान

दिनांक १४-१२-८१ से
२२-१२-८१ तक

योग प्रचार कार्यक्रम कलकत्ता
पता—टीबरे वालों की धर्मशाला
(नजदीक महाप्यारी सदन व सन्मार्ग प्रेस)
१८४, चितरञ्जन एवन्यू कलकत्ता-७

दिनांक २३-१२-८१ को दुर्गापुर के लिए प्रस्थान

दिनांक २३-१२-८१ से
२४-१२-८१ तक

योग-प्रचार कार्यक्रम दुर्गापुर
पता—डा० जगन्नाथ साहू, ४/५ विवेकानन्द
रोड, दुर्गापुर-७१३२०५, फोन २६५६

दिनांक २५-१२-८१ को धनबाद के लिए प्रस्थान

दिनांक २५-१२-८१ से
३१-१२-८१ तक

योग-प्रचार कार्यक्रम धनबाद
पता—द्वारा ला० रामधनदास अग्रवाल
मुहल्ला धरी (पानी की टंकी के पास)
धनबाद (बिहार)

दिनांक ३१-१२-८१ को बनारस के लिए प्रस्थान

दिनांक १—१—८२ से
४—१—८२ तक

योग-प्रचार कार्यक्रम बनारस
पता - श्री आत्माप्रसादसिंह एडवोकेट
सी-१७/२७६, नदेसर, वाराणसी उ.प्र.

दिनांक ४—१—८२ को कछवा के लिए प्रस्थान

दिनांक ४—१—८२ से
६—१—८२ तक

योग-प्रचार कार्यक्रम कछवा
पता—श्री स्वामीप्रसादसिंह एडवोकेट
मु. पो. कछवा रोड, जिला- मिर्जापुर

दिनांक ७—१—८२ को इलाहाबाद के लिए प्रस्थान

दिनांक ७—१—८२ से
७—२—८२ तक

योग-प्रचार कार्यक्रम व निवास
पता—द्वारा डा० बी. पी. जौहरी
१२५, अलोपी बाग, इलाहाबाद

❀ आगे के कार्यक्रम आगामी अंकों में प्रकाशित होंगे। ❀

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक

न हि कश्चित् क्षणमपि

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

—गीत

कर्म करना तो मनुष्य का स्वभाव है। कोई भले ही कह दे कि नहीं करेगा, तो भी कर्म तो उसे करना ही होगा, बिना कर्म किये रह ही नहीं सकता, ऊब जाता है। गीता का यह कहना कि मनुष्य से छूट ही नहीं सकता, एक गंभीर सत्य का उद्घाटन कर यह शंका उठाना निरर्थक है कि निष्काम-कर्म की बात करेंगे, तो कर्म करना ही छोड़ देगा। निष्काम-कर्म की चर्चा करने से कर्म से रहा, कर्म तो मनुष्य को अपने स्वभाव से करना पड़ेगा, प्रश्न जाता है कि कर्म करे तो क्या सकाम-भाव से करे या निष्काम- करे। इस शंका का उत्तर देते हुए गीता का कहना है कि मीमांसा में कितनी ही गहराई में हम क्यों न चले जायें, निष्का से कर्म करने से ही मनुष्य को चैन, शान्ति तथा सन्तोष मिल है, सकाम-भाव के रास्ते पर चलने से बेचैनी, अशान्ति तथा अ के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगता।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बल्लई पल्ली, राजगंज, आगरा-